नवम्बर, 2014

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

महत्वपूर्ण निर्णय

स्टेट बैंक आफ इंडिया (समनुषंगी बैंक) अधिनियम, 1959 (1959 का 38) – धारा 63 [सपठित स्टेट बैंक आफ पटियाला (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 – विनियम 14, 18 और 29] – स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति – पेंशन – चूंकि पेंशन के लिए अर्हक सेवा 20 वर्ष नियत की गई थी इसलिए वे कर्मचारी जिन्होंने 19 वर्ष 6 मास से अधिक सेवा पूरी कर ली थी विनियम 18 के फायदे के हकदार होंगे जिसमें यह उपबंध है कि 6 मास से अधिक की खंडित सेवा को एक वर्ष की सेवा माना जाना चाहिए और इसलिए उन्हें पेंशन से वंचित नहीं किया जा सकता है ।

स्टेट बैंक आफ पटियाला बनाम **प्रीतम सिंह बेदी और अन्य** 202

संसद् के अधिनियम

स्त्री अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1986 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (6)

पृष्ठ संख्या **155 – 305** **[2014] 4 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. संजय सिंह,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

प्रो. डा. वैभव गोयल,
सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ
विधि विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ला और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 19

वार्षिक : ₹ 225

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटोरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – नवम्बर, 2014 [पृष्ठ संख्या 155 – 305]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

नवम्बर, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अपोलो पशु-चिकित्सा आयुर्विज्ञान महाविद्यालय **बनाम** राजस्थान राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् और अन्य	231
पुंडप्पा यंकप्पा पुजारी **बनाम** कर्नाटक राज्य	182
पवन कुमार रल्ली **बनाम** मनिंदर सिंह नरुला	262
भारत संघ और एक अन्य **बनाम** संजीव वी. देशपांडे	278
राजस्थान राज्य और एक अन्य **बनाम** सुरेन्द्र मोहनोट और अन्य	155
सी. के. दासेगौड़ा और अन्य **बनाम** कर्नाटक राज्य	221
स्टेट बैंक आफ पटियाला **बनाम** प्रीतम सिंह बेदी और अन्य	202
संसद् के अधिनियम	
स्त्री अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1986 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (6)

पृष्ठ संख्या

अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का 25)

– धारा 35 – काउन्सेल का कर्तव्य – चूंकि राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले काउन्सेल का उत्तरदायित्व अधिक होता है और न्यायालय को सहायता प्रदान करने के संबंध में उसका विशेष कर्तव्य होता है ।

राजस्थान राज्य और एक अन्य बनाम **सुरेन्द्र मोहनोट और अन्य** 155

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 378 [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 324] – अपील न्यायालय की साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने, पुनर्विलोकन करने या उस पर पुनर्विचार करने तथा दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करने की शक्ति – व्याप्ति – यद्यपि अपील न्यायालय को दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील में उस साक्ष्य का, जिसके आधार पर निर्णय किया गया है, पुनर्विलोकन करने, पुनर्मूल्यांकन करने तथा पुनर्विचार करने की पूर्ण शक्ति प्राप्त है और ऐसी शक्ति के प्रयोग के संबंध में कोई निर्बंधन, परिसीमा या शर्त नहीं है तथापि, अपील न्यायालय को यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि जहां निर्दोषिता की उपधारणा अभियुक्त के पक्ष में हो और उसकी निर्दोषिता विचारण न्यायालय द्वारा प्रबलित होती हो और जहां दो युक्तियुक्त मत संभव हों और एकमत अभियुक्त के पक्ष में हो तो अपील न्यायालय को दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।

सी. के. दासेगौड़ा और अन्य बनाम **कर्नाटक राज्य** 221

पृष्ठ संख्या

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – मृतक और अपीलार्थी के बीच खेत की सीमा को लेकर विवाद – अपील न्यायालय द्वारा साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन – अपील न्यायालय साक्ष्य का उस स्थिति में पुनर्मूल्यांकन कर सकता है जब उसका यह समाधान हो जाए कि विचारण न्यायालय ने त्रुटि की है और वह प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों की विश्वसनीयता पर विचार करने में असफल रहा है तथा ऐसे कतिपय विरोधाभासों और लोपों के आधार पर किसी साक्ष्य को खारिज करना उचित नहीं होगा जिनका संबंध मामले के मूल आधार से न हो, अतः ऐसे विरोधाभासों और लोपों के आधार पर की गई दोषमुक्ति न्यायोचित नहीं होगी ।

पुंडप्पा यंकप्पा पुजारी बनाम **कर्नाटक राज्य** 182

– धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – संपूर्ण साक्ष्य का विश्वासप्रद न होना – विभाज्यता का सिद्धांत – ऐसी परिस्थितियों में जहां साक्षी का संपूर्ण साक्ष्य विश्वासप्रद नहीं पाया जाता है वहां विभाज्यता का सिद्धांत लागू हो सकता है और साक्ष्य का वह भाग जो विश्वसनीय है, स्वीकार किया जा सकता है और अन्य भाग त्यक्त किया जा सकता है और इस आधार पर की गई दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

पुंडप्पा यंकप्पा पुजारी बनाम **कर्नाटक राज्य** 182

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26)

– धारा 138, 141 और 142 [सपठित दंड संहिता की धारा 420 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482] – चैक का अनादरण – परिवादी-अपीलार्थी द्वारा बैंक से चैक के अनादरण की जानकारी प्राप्त होने पर

पृष्ठ संख्या

अभियुक्त-प्रत्यर्थी को हस्तलिखित टिप्पण द्वारा रकम का संदाय करने की सूचना दिया जाना – अभियुक्त द्वारा कोई उत्तर न देने पर विधिक सूचना जारी करना और बाद में परिवाद फाइल किया जाना – अभियुक्त द्वारा परिसीमा के प्रश्न के आधार पर दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए उच्च न्यायालय में मामला फाइल किया जाना – चूंकि अधिनियम में सूचना का कोई विहित प्ररूप नहीं दिया गया है, इसलिए यदि हस्तलिखित टिप्पण में सूचना के सभी संघटक मौजूद होते हैं, तो उसे विधिक सूचना माना जा सकता है ।

पवन कुमार रल्ली बनाम **मनिंदर सिंह नरुला** 262

– धारा 138, 141 और 142 [सपठित दंड संहिता की धारा 420 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482] – चैक का अनादरण – परिवादी-अपीलार्थी द्वारा बैंक से चैक के अनादरण की जानकारी प्राप्त होने पर अभियुक्त-प्रत्यर्थी को हस्तलिखित टिप्पण द्वारा रकम का संदाय करने की सूचना दिया जाना – अभियुक्त द्वारा कोई उत्तर न देने पर विधिक सूचना जारी करना और बाद में परिवाद फाइल किया जाना – अभियुक्त द्वारा परिसीमा के प्रश्न के आधार पर दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए उच्च न्यायालय में मामला फाइल किया जाना – परिवादी द्वारा प्रथम बार उच्च न्यायालय के समक्ष विलंब की माफी के लिए आवेदन दिया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा विलंब की माफी के लिए आवेदन पर गुणागुण के आधार पर विचार न करके परिसीमा के आधार पर कार्यवाहियों को अभिखंडित किया जाना – अधिनियम की धारा 142(ख) के परंतुक को अधिनियमित करने के विधायी आशय को देखते हुए उच्च न्यायालय ने विलंब की माफी के आवेदन पर गुणागुण के आधार पर विचार

पृष्ठ संख्या

न करके और दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करके गलती की है, अतः परिसीमा के प्रश्न पर विचार करने के लिए मामले को विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित करना उचित होगा ।

पवन कुमार रल्ली बनाम **मनिंदर सिंह नरुला** 262

भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 (1984 का 52)

– धारा 15, 19, 21 और प्रथम अनुसूची [सपठित भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् विनियम, 2008 का विनियम 2(न) और भारतीय पशु-चिकित्सा (रजिस्ट्रीकरण) विनियम, 1992 का विनियम 2(ग) तथा भारतीय चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1956 की धारा 11 और 19] – राजस्थान राज्य द्वारा दो महाविद्यालयों को पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिक्री पाठ्यक्रम की शिक्षा देने के लिए भारत संघ द्वारा अनुज्ञा अनुदत्त करने के अधीन रहते हुए, अनापत्ति प्रमाणपत्र जारी किया जाना – राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय द्वारा संबद्धता प्रदान किया जाना – भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा समय-समय पर अनापत्ति प्रमाणपत्र अनुदत्त किया जाना – केन्द्रीय सरकार द्वारा उक्त महाविद्यालयों के नाम प्रथम अनुसूची में सम्मिलित न करके पाठ्यक्रम को मान्यता न दिया जाना – चूंकि केन्द्रीय सरकार किसी विनिर्दिष्ट महाविद्यालय या संस्था द्वारा दी गई पशु-चिकित्सा अर्हता को मान्यताप्राप्त अर्हता के रूप में घोषित करते हुए प्रथम अनुसूची में प्रविष्टि करने के लिए सशक्त है, इसलिए उक्त महाविद्यालय धारा 2(ञ) के अंतर्गत पशु-चिकित्सा संस्थाएं नहीं हैं किंतु इन महाविद्यालयों से पहले ही उत्तीर्ण होकर गए छात्रों की अर्हता को मान्यता प्रदान करने के लिए इसे प्रथम अनुसूची में सम्मिलित करने के लिए केन्द्रीय सरकार को

पृष्ठ संख्या

निदेश जारी किया जाना उचित होगा ।

अपोलो पशु-चिकित्सा आयुर्विज्ञान महाविद्यालय बनाम **राजस्थान राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् और अन्य** 231

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 16 – चयन ग्रेड – चयन ग्रेड प्रदान करने के लिए अपेक्षित अवधि की गणना उस सेवा/काडर में नियमित किए जाने की तारीख से न कि उससे पूर्व की तारीख से की जानी है ।

राजस्थान राज्य और एक अन्य बनाम **सुरेन्द्र मोहनोट और अन्य** 155

– अनुच्छेद 226 – आदेश का पुनर्विलोकन – न्यायालय के किसी आदेश का पुनर्विलोकन करने से संबंधित आवेदन इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वह आदेश पक्षकारों की सहमति के आधार पर पारित किया गया था क्योंकि यहां यह सूत्र लागू होगा कि "न्यायालय के कार्य से किसी की हानि नहीं होती" ।

राजस्थान राज्य और एक अन्य बनाम **सुरेन्द्र मोहनोट और अन्य** 155

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 115 – विबंध – न्यायालय में यह सम्मति दिया जाना कि संविवाद ऐसे निर्णय के अंतर्गत आता है जो कि उस मामले को किसी भी प्रकार लागू नहीं होता है और वह निर्णय किसी भिन्न क्षेत्र से संबंधित है – ऐसी सम्मति के कारण पक्षकार को यह मुद्दा उठाने से विबद्ध नहीं किया जा सकता है कि उस निर्णय को गलत तौर पर उद्धृत किया गया था ।

राजस्थान राज्य और एक अन्य बनाम **सुरेन्द्र मोहनोट और अन्य** 155

पृष्ठ संख्या

स्टेट बैंक आफ इंडिया (समनुषंगी बैंक) अधिनियम, 1959 (1959 का 38)

– धारा 63 [सपठित स्टेट बैंक आफ पटियाला (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 – विनियम 14, 18 और 29] – स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति – पेंशन – चूंकि पेंशन के लिए अर्हक सेवा 20 वर्ष नियत की गई थी इसलिए वे कर्मचारी जिन्होंने 19 वर्ष 6 मास से अधिक सेवा पूरी कर ली थी विनियम 18 के फायदे के हकदार होंगे जिसमें यह उपबंध है कि 6 मास से अधिक की खंडित सेवा को एक वर्ष की सेवा माना जाना चाहिए और इसलिए उन्हें पेंशन से वंचित नहीं किया जा सकता है ।

स्टेट बैंक आफ पटियाला बनाम **प्रीतम सिंह बेदी और अन्य** 202

स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (1985 का 61)

– धारा 8(ग) और अनुसूची-1 [सपठित स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ नियम, 1985 का नियम 53, 63, 64 और अनुसूची-1 तथा ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धारा 80] – अधिनियम की अनुसूची-1 में उल्लिखित स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों से संबंधित कतिपय संक्रियाओं का प्रतिषेध – धारा 8(ग) में अंतर्विष्ट उक्त प्रतिषेध अधिनियम में दी गई अनुसूची में उल्लिखित स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों पर लागू होता है और यह प्रतिषेध केवल अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों में दी गई अनुसूची में उल्लिखित मनःप्रभावी पदार्थों तक ही सीमित नहीं है ।

भारत संघ और एक अन्य बनाम **संजीव वी. देशपांडे** 278

राजस्थान राज्य और एक अन्य

बनाम

सुरेन्द्र मोहनोट और अन्य

30 जून, 2014

न्यायमूर्ति अनिल आर. दवे और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 115 – विबंध – न्यायालय में यह सम्मति दिया जाना कि संविवाद ऐसे निर्णय के अंतर्गत आता है जो कि उस मामले को किसी भी प्रकार लागू नहीं होता है और वह निर्णय किसी भिन्न क्षेत्र से संबंधित है – ऐसी सम्मति के कारण पक्षकार को यह मुद्दा उठाने से विबद्ध नहीं किया जा सकता है कि उस निर्णय को गलत तौर पर उद्धृत किया गया था ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 16 – चयन ग्रेड – चयन ग्रेड प्रदान करने के लिए अपेक्षित अवधि की गणना उस सेवा/काडर में नियमित किए जाने की तारीख से न कि उससे पूर्व की तारीख से की जानी है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – आदेश का पुनर्विलोकन – न्यायालय के किसी आदेश का पुनर्विलोकन करने से संबंधित आवेदन इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वह आदेश पक्षकारों की सहमति के आधार पर पारित किया गया था क्योंकि यहां यह सूत्र लागू होगा कि "न्यायालय के कार्य से किसी की हानि नहीं होती" ।

अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का 25) – धारा 35 – काउन्सेल का कर्तव्य – चूंकि राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले काउन्सेल का उत्तरदायित्व अधिक होता है और न्यायालय को सहायता प्रदान करने के संबंध में उसका विशेष कर्तव्य होता है ।

प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी सं. 1 से 6 को नियत कालावधि के लिए तदर्थ आधार पर प्रशासनिक कार्य के निर्बाध कार्य-संचालन के लिए सीधे या वर्ग IV के कर्मचारियों में से अवर श्रेणी लिपिक के रूप में नियुक्त किया गया था । इन नियुक्तियों की प्रकृति तारीख 26 जून, 1986,

5 जुलाई, 1986 और 25 अक्तूबर, 1986 के नियुक्ति आदेशों से स्पष्ट है । प्रत्यर्थी सं. 7 को जनवरी, 1998 में समरूप शर्तों पर नियुक्त किया गया था । प्रत्यर्थी तारीख 28 अप्रैल, 1993 को अपेक्षित परीक्षा में बैठे और तदनुसार उन्हें तारीख 28 अप्रैल, 1993 के आदेश द्वारा अवर श्रेणी लिपिक के पदों पर नियमित किया गया था । राजस्थान राज्य ने तारीख 25 जनवरी, 1992 को एक परिपत्र जारी किया जो वर्ग IV, अनुसचिवीय और अधीनस्थ सेवाओं में के कर्मचारियों और उन कर्मचारियों के लिए जो एकल पद धारण किए हुए हैं, चयन ग्रेड देने और चयन श्रेणियों में उनका वेतन नियत करने के संबंध में है । यह परिपत्र कतिपय प्रवर्गों के कर्मचारियों को लागू किया गया था और उसमें अवधि भी विहित की गई थी । परिपत्र के पैरा 2 में यह अनुबद्ध था कि (i) पहला चयन ग्रेड उस तारीख से, जिसको कोई कर्मचारी नौ वर्ष की सेवा पूरी करता है, अगले दिन से दिया जाएगा बशर्ते उस कर्मचारी ने अपने विद्यमान काडर में उपलब्ध एक प्रोन्नति पहले से प्राप्त न कर ली हो; (ii) दूसरा चयन ग्रेड उस तारीख से, जिसको कोई कर्मचारी अठारह वर्ष की सेवा पूरी करता है, अगले दिन से दिया जाएगा बशर्ते उस कर्मचारी ने अपने विद्यमान काडर में उपलब्ध दो प्रोन्नतियां पहले से प्राप्त न कर ली हों और उसे दिया गया पहला चयन ग्रेड 2200-4000 रुपए के वेतनमान से कम है; और (iii) तीसरा चयन ग्रेड उस तारीख से, जिसको कोई कर्मचारी सत्ताईस वर्ष की सेवा पूरी करता है, अगले दिन से दिया जाएगा बशर्ते उस कर्मचारी ने अपने विद्यमान काडर में उपलब्ध दो प्रोन्नतियां पहले से प्राप्त न कर ली हों और उसे प्रदान किया गया, यथास्थिति, पहला या दूसरा चयन ग्रेड 2200-4000 रुपए के वेतनमान से कम है । पैरा 3 में यह उपबंध है कि यथास्थिति 9, 18 और 27 वर्ष की सेवा की गणना भर्ती नियमों में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार विद्यमान काडर/सेवा में पहली नियुक्ति की तारीख से की जाएगी । पूर्वोक्त परिपत्र कतिपय सेवा प्रवर्गों पर वृद्धिरुद्धता से बचने के लिए इस उद्देश्य से जारी किया गया था कि वृद्धिरुद्ध कर्मचारी को 9, 18 और 27 वर्ष की सेवा पूरी करने के पश्चात् रिक्तियों की कमी के कारण प्रोन्नति प्राप्त किए बिना प्रोन्नति वाले पद पर उपलब्ध अगला वेतनमान प्राप्त हो जाना चाहिए । प्रत्यर्थियों ने कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर राज्य सरकार की उस कार्रवाई को चुनौती दी जिसके द्वारा उन्हें सेवा में उनके नियमित किए जाने से पूर्व की अवधि के लिए वेतनवृद्धियां देने से इनकार किया गया था । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने वे रिट याचिकाएं खारिज कर दीं और खंड न्यायपीठ ने एकल न्यायाधीश के निर्णय को उलट दिया और प्रत्यर्थियों की अपीलें

मंजूर कर लीं । उक्त आदेश को उच्चतम न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई । उच्चतम न्यायालय ने अपीलें खारिज कर दीं और यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी अपनी अस्थायी सेवा की अवधि के दौरान वेतनवृद्धियां प्राप्त करने के हकदार हैं । सिविल अपीलों के खारिज हो जाने के पश्चात्, राज्य सरकार ने प्रत्यर्थियों को वार्षिक ग्रेड वेतनवृद्धियां देने संबंधी परिपत्र जारी किया । इसके पश्चात् राजस्थान सरकार ने तारीख 29 जून, 2009 को एक स्पष्टीकारक परिपत्र जारी किया जिसमें चयन ग्रेड दिए जाने की पद्धति तथा 9, 18 और 27 वर्ष की संगणना करने की रीति विहित की गई थी जिसके द्वारा यह स्पष्ट किया गया था कि चयन ग्रेड दिए जाने के प्रयोजनार्थ सेवा की गणना उस तारीख से की जानी थी जिसको कर्मचारी को सुसंगत भर्ती नियमों में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार विद्यमान काडर/सेवा में नियमित रूप से नियुक्त किया गया था । उसमें यह स्पष्ट किया गया था कि उस पद के भर्ती नियमों के अनुसार नियमित नियुक्ति से पूर्व की गई सेवा की अवधि की गणना चयन ग्रेड देने के लिए नहीं की जाएगी । 2009 वाले परिपत्र में तदर्थ नियुक्ति की तारीख से चयन ग्रेड देने संबंधी कर्मचारियों के दावे और राज्य सरकार की कार्रवाई के प्रति निर्देश किया गया था । इस परिपत्र में राजस्थान राज्य और अन्य **बनाम** जगदीश नारायण चतुर्वेदी (2009) 12 एस. सी. सी. 49 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का उल्लेख किया गया है । प्रत्यर्थियों ने 18 वर्ष की सेवा पूरी करने के पश्चात् इस आधार पर चयन ग्रेड देने के लिए अभ्यावेदन किया कि उन्हें पहला चयन ग्रेड उनकी आरंभिक नियुक्ति की तारीख से नौ वर्ष के पश्चात् दिया गया था । उक्त अभ्यावेदन नामंजूर हो जाने पर उन्होंने उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करते हुए रिट याचिका मंजूर कर ली कि पक्षकारों के काउन्सेल इस बात से सहमत हैं कि यह संविवाद चन्द्र शेखर बनाम राजस्थान राज्य और अन्य वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए अब अनिर्णीत विषय नहीं रहा है । इसके पश्चात् यह कथन करते हुए पुनर्विलोकन के लिए आवेदन फाइल किया गया था कि प्रस्तुत संविवाद चन्द्र शेखर वाले निर्णय के अंतर्गत नहीं आता है बल्कि जगदीश नारायण चतुर्वेदी वाले निर्णय के अंतर्गत आता है । किन्तु पुनर्विलोकन संबंधी उक्त आवेदन भी एकल न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया था । इससे असंतुष्ट होकर, राज्य सरकार ने खंड न्यायपीठ में विशेष सिविल अपील फाइल की किन्तु खंड न्यायपीठ ने भी यह राय व्यक्त करते हुए वह अपील खारिज कर दी कि वह एक सम्मत आदेश था

इसलिए इसके विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की जा सकती है । अब उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रारंभ में ही यह स्पष्ट किया जा सकता है कि चन्द्र शेखर वाले मामले में किए गए विनिश्चय का संबंध नियमितीकरण से पूर्व वाली अवधि के लिए वेतनवृद्धियां देने से है । इसका चयन ग्रेड देने से कोई संबंध नहीं है । जिन परिपत्रों का उल्लेख किया गया है वे चयन ग्रेड देने के संबंध में हैं । इस पृष्ठभूमि में, यह देखा जाना है कि इस न्यायालय द्वारा जगदीश नारायण चतुर्वेदी वाले मामले में क्या अधिकथित किया गया है । उक्त मामले में, दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ इस मुद्दे पर विचार कर रही थी कि क्या तदर्थ नियुक्तियों या दैनिक मजदूरी या निर्धारित कर्म पर आधारित नियुक्तियों को तारीख 25 जनवरी, 1992 और 17 फरवरी, 1998 के सरकारी आदेशों द्वारा यथा-अनुध्यात भर्ती नियमों में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार काडर/सेवा में की गई नियुक्तियों के रूप में माना जा सकता था । विधिक प्रतिपादना से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि चयन ग्रेड देने के लिए अवधि की गणना सेवा में नियमित किए जाने की तारीख से न कि उससे पूर्व की जानी है । इस प्रकार, इस न्यायालय का पूर्वोक्त निर्णय उसी परिपत्र के संबंध में है और वह समस्त दृष्टिकोणों से एक बाध्यकारी पूर्वनिर्णय है । विधि की दृष्टि से यह सुस्थापित है कि विधि के विरुद्ध कोई वचन-विबंध नहीं हो सकता है । किसी न्यायालय में दी गई यह सहमति कि कोई संविवाद किसी ऐसे निर्णय के अंतर्गत आता है जो किसी भी प्रकार से उसे लागू नहीं होता है और उसका संबंध किसी भिन्न क्षेत्र से है, पक्षकार को यह मुद्दा उठाने से विबद्ध नहीं कर सकती कि वह गलत तौर पर उद्धृत किया गया था । (पैरा 15, 16 और 17)

वर्तमान मामले में, जैसा कि तथ्यात्मक आधार से प्रकट होता है, पुनर्विलोकन के आवेदन के लिए विवेचन की लंबी प्रक्रिया अपेक्षित नहीं थी । इसके लिए गुणागुण के आधार पर विचार करना अपेक्षित नहीं था जो कि अपील न्यायालय का क्षेत्राधिकार है । स्पष्टतः, यह प्रकट और सुस्पष्ट त्रुटि थी । एक ऐसी गलत नजीर को उद्धृत किया गया था जिसका इस मुकदमे से कोई संबंध नहीं था और उसे स्वीकार कर लिया गया था । इससे पूर्व विद्यमान बाध्यकारी पूर्वनिर्णय को अनदेखा कर दिया गया था । रिट न्यायालय को देखने मात्र से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए था कि वह विनिश्चय गलत नजीर के आधार पर दिया गया था । यह त्रुटि स्वतः स्पष्ट थी । जब ऐसी स्वतः स्पष्ट त्रुटियां न्यायालय की जानकारी में आती हैं और

उन्हें पुनर्विलोकन अधिकारिता या वापस मंगाने संबंधी अधिकारिता का प्रयोग करके, जो कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन सर्वांगीण अधिकारिता का एक पहलू है, सुधारा नहीं जाता है तो न्याय की गंभीर हानि कारित होती है । खंड न्यायपीठ ने अपील में निर्णयों पर दृष्टिपात करना भी आवश्यक नहीं समझा और स्वयं को इस तथ्य से अवगत नहीं कराया कि पुनर्विलोकन के लिए आवेदन इससे पूर्व विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष फाइल किया गया था और वह खारिज हो गया था । जैसा कि प्रतीत होता है, उसने अल्पकालिक और संक्षिप्त रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(3) में प्रतिष्ठापित सिद्धांत पर विचार किया, जिसके फलस्वरूप उसके द्वारा दिया गया विनिश्चय विधिक दृष्टि से भेद्य हो गया है । (पैरा 26)

जहां तक विधिक स्थिति से संबंधित छूट का संबंध है, विधिक प्रभाव के बारे में विधिक स्थिति का कथन पहले ही कर दिया गया है । इसके अलावा, न्यायालय के किसी कार्य से किसी पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए और यह सूक्ति उचित रूप से लागू हो जाती है कि "न्यायालय के कार्य से किसी की हानि नहीं होती" । यह देखना न्यायालय का कर्तव्य है कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग न किया जाए और यदि कोई कथन करके न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया गया है और उसी न्यायालय, विशेष रूप से रिट न्यायालय को इससे अवगत करा दिया जाता है तो वह हमेशा अपने आदेश को वापस मंगा सकता है क्योंकि वह छूट, जो इसका आधार गठित करती है, त्रुटिपूर्ण है । इसी प्रकार, खंड न्यायपीठ अंतर-न्यायालीय अपील में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(3) के अधीन अनुबद्ध सम्मति डिक्री की संकल्पना का उल्लेख करने की बजाय इस बात की परीक्षा करने से संबंधित स्थापित सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शित होनी चाहिए कि विधि में दी गई छूट सही थी अथवा नहीं । किसी गलती को न मानना कोई बहादुरी का कार्य नहीं होता है । इसके विपरीत, इससे अड़ियलपन के प्रति दोषपूर्ण समर्पण प्रतिबिंबित होता है । किसी व्यक्ति का चरमोत्कर्ष वास्तव में अपनी गलती मान लेने में ही विकसित होता है । (पैरा 27)

इसलिए, अप्रतिरोध्य निष्कर्ष यह है कि वे नियमितीकरण की तारीख से ही चयन ग्रेड के फायदों के पात्र हैं । नौ वर्ष, अठारह वर्ष और सत्ताईस वर्ष की अवधि की संगणना उस तारीख से की जानी है । यह सही है कि हो सकता है कि उन्हें पहला फायदा उस परिपत्र के भ्रामक बोध के कारण और जगदीश नारायण चतुर्वेदी वाले विनिश्चय से भी पूर्व दिया गया हो ।

किन्तु इस कारण वे उस आधार पर अपने दावे पर जोर देने के हकदार नहीं हो जाएंगे क्योंकि ऐसा जगदीश नारायण चतुर्वेदी वाले मामले में यथा-कथित इस देश की विधि के प्रतिकूल होगा । यह ध्यान देने योग्य है कि राज्य ने, जैसा कि पश्चात्वर्ती परिपत्र से उपदर्शित होगा, फायदे के प्रत्युद्धरण के लिए कोई कदम न उठाने का विनिश्चय किया है । अतः, प्रत्यर्थियों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गई रिट याचिका खारिज की जानी चाहिए और तदनुसार, रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश और अंतर-न्यायालीय अपील में किया गया विनिश्चय अपास्त किए जाते हैं और रिट याचिका खारिज की जाती है । (पैरा 28)

जहां तक राज्य के काउन्सेल का संबंध है, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसका उत्तरदायित्व अधिक होता है । ऐसे काउन्सेल से, जो राज्य का प्रतिनिधित्व करता है, तथ्यों का सही और निष्कपट रीति में कथन करने की अपेक्षा की जाती है । उसे अपने कर्तव्य का निर्वहन अत्यंत उत्तरदायित्वपूर्ण करना होता है और उसकी प्रत्येक कार्यवाही तर्कसंगत होनी चाहिए । उससे यह प्रत्याशा की जाती है कि उसका आचरण उच्चतर स्तर का होना चाहिए । उसका न्यायालय के प्रति उसे सहायता प्रदान करने के संबंध में विशेष कर्तव्य होता है । ऐसा इस कारण है कि लोक अभिलेखों तक उसकी पहुंच होती है और वह लोक हित के संरक्षण के लिए भी बाध्य होता है । इसके अलावा, उसका न्यायालय के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व होता है । जब इन मूल्यों का ह्रास होता है तो हम यह कह सकते हैं कि मामला गड़बड़ है । उसे सदैव यह याद रखना चाहिए कि एक अधिवक्ता को महत्वाकांक्षा और उपलब्धि के प्रति संवेदनशील न होते हुए अपनी हड्डियों में विधिक वृत्ति की नैतिकता और कुलीनता का एहसास होना चाहिए । हमें आशा है कि उनकी अपने कर्तव्य के प्रति, जो कि एक निस्सार और प्रतिष्ठित कर्तव्य है, प्रासंगिक प्रतिक्रिया होगी । (पैरा 31)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 6 एस. सी. सी. 86 : **ओ. पी. शर्मा और अन्य** बनाम **पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय** ;	29
[2009]	(2009) 12 एस. सी. सी. 49 : **राजस्थान राज्य और अन्य** बनाम **जगदीश नारायण चतुर्वेदी** ;	7, 8, 9,11, 13,15, 28

[2009]	(2009) 1 एस. सी. सी. 168 : **सिटी एंड इंडस्ट्रियल डेवेल्पमेंट कारपोरेशन** बनाम **दोसू आर्देशीर भिवंडीवाला और अन्य** ;	27
[2001]	1998 की सिविल अपील सं. 3441 जिसका विनिश्चय तारीख 27 सितम्बर, 2001 को किया गया : **चन्द्र शेखर** बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य** ;	6, 11, 13, 15, 27
[2000]	(2000) 8 एस. सी. सी. 4 : **हरियाणा राज्य** बनाम **हरियाणा वैटेनरी एंड ए. एच. टी. एस. एसोसिएशन और एक अन्य** ;	15
[1998]	(1998) 2 एस. सी. सी. 523 : **बी. एस. बजवा और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ;	19
[1998]	1996 की खंड न्यायपीठ सिविल विशेष अपील सं. 377 जिसका विनिश्चय तारीख 6 जनवरी, 1998 को किया गया : **चन्द्र शेखर** बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य** ;	5, 8, 10, 27
[1997]	(1997) 1 एस. सी. सी. 621 : **राम गणेश त्रिपाठी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	15
[1996]	(1996) 10 एस. सी. सी. 574 : **भारत संघ** बनाम **हीरा लाल और अन्य** ;	18
[1995]	(1995) 3 एस. सी. सी. 619 : **संजीव दत्ता, उप-सचिव, सूचना और प्रसारण मंत्रालय,नई दिल्ली, 2. कैलाश वासदेव, अधिवक्ता, 3. किट्टी कुमारमंगलम (श्रीमती), अधिवक्ता** ;	30
[1980]	(1980) 2 एस. सी. सी. 167 : **मैसर्स नार्दर्न इंडिया कैटरर्स (इंडिया) लिमिटेड** बनाम **दिल्ली का उप-राज्यपाल** ;	24
[1979]	(1979) 4 एस. सी. सी. 389 : **अरीबाम तुलेश्वर शर्मा** बनाम **अरीबाम पिशाक शर्मा और अन्य** ;	22

[1964] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1372 :
मैसर्स तुंगभद्रा इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड बनाम
आन्ध्र प्रदेश सरकार, (जिसका प्रतिनिधित्व उपायुक्त, वाणिज्य-कर द्वारा किया गया था) ; 23

[1963] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1909 :
शिवदेव सिंह और अन्य बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ; 21

[1960] ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 137 :
सत्यनारायण लक्ष्मी नारायण हेगड़े बनाम
मल्लिकार्जुन भावनप्पा तिरुमाले । 25

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं. 5860-61.

2010 की एकल न्यायपीठ सिविल रिट याचिका सं. 4185 और 2011 की खंड न्यायपीठ सिविल विशेष अपील सं. 835 में तारीख 6 जुलाई, 2011 तथा 2010 की एकल न्यायपीठ सिविल रिट याचिका सं. 4185, 2011 की खंड न्यायपीठ सिविल पुनरीक्षण अपील सं. 67 और 2011 की खंड न्यायपीठ सिविल विशेष अपील सं. 835 में तारीख 22 अक्तूबर, 2011 के राजस्थान उच्च न्यायालय की जोधपुर न्यायपीठ के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री डा. मनीष सिंघवी, अपर महाधिवक्ता, अमित लुभाया और इरशाद अहमद

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री ऐश्वर्या भाटी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – इजाजत दी जाती है ।

2. प्रत्यर्थी सं. 1 से 6 को नियत कालावधि के लिए तदर्थ आधार पर प्रशासनिक कार्य के निर्बाध कार्य-संचालन के लिए सीधे या वर्ग IV के कर्मचारियों में से अवर श्रेणी लिपिक के रूप में नियुक्त किया गया था । इन नियुक्तियों की प्रकृति तारीख 26 जून, 1986, 5 जुलाई, 1986 और 25 अक्तूबर, 1986 के नियुक्ति आदेशों से स्पष्ट है । प्रत्यर्थी सं. 7 को जनवरी, 1998 में समरूप शर्तों पर नियुक्त किया गया था । प्रत्यर्थी तारीख

28 अप्रैल, 1993 को अपेक्षित परीक्षा में बैठे और तदनुसार उन्हें तारीख 28 अप्रैल, 1993 के आदेश द्वारा अवर श्रेणी लिपिक के पदों पर नियमित किया गया था ।

3. राजस्थान राज्य ने तारीख 25 जनवरी, 1992 को एक परिपत्र जारी किया जो वर्ग IV, अनुसचिवीय और अधीनस्थ सेवाओं में के कर्मचारियों और उन कर्मचारियों के लिए जो एकल पद धारण किए हुए हैं, चयन ग्रेड देने और चयन श्रेणियों में उनका वेतन नियत करने के संबंध में है । यह परिपत्र कतिपय प्रवर्गों के कर्मचारियों को लागू किया गया था और उसमें अवधि भी विहित की गई थी । परिपत्र के पैरा 2 में यह अनुबद्ध था कि (i) पहला चयन ग्रेड उस तारीख से, जिसको कोई कर्मचारी नौ वर्ष की सेवा पूरी करता है, अगले दिन से दिया जाएगा बशर्ते उस कर्मचारी ने अपने विद्यमान काडर में उपलब्ध एक प्रोन्नति पहले से प्राप्त न कर ली हो; (ii) दूसरा चयन ग्रेड उस तारीख से, जिसको कोई कर्मचारी अठारह वर्ष की सेवा पूरी करता है, अगले दिन से दिया जाएगा बशर्ते उस कर्मचारी ने अपने विद्यमान काडर में उपलब्ध दो प्रोन्नतियां पहले से प्राप्त न कर ली हों और उसे दिया गया पहला चयन ग्रेड 2200-4000 रुपए के वेतनमान से कम है; और (iii) तीसरा चयन ग्रेड उस तारीख से, जिसको कोई कर्मचारी सत्ताईस वर्ष की सेवा पूरी करता है, अगले दिन से दिया जाएगा बशर्ते उस कर्मचारी ने अपने विद्यमान काडर में उपलब्ध दो प्रोन्नतियां पहले से प्राप्त न कर ली हों और उसे प्रदान किया गया, यथास्थिति, पहला या दूसरा चयन ग्रेड 2200-4000 रुपए के वेतनमान से कम है । पैरा 3 में यह उपबंध है कि यथास्थिति 9, 18 और 27 वर्ष की सेवा की गणना भर्ती नियमों में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार विद्यमान काडर/सेवा में पहली नियुक्ति की तारीख से की जाएगी । यहां यह उल्लेख करना उचित है कि उस परिपत्र में कतिपय अन्य शर्तें रखी गई थीं, जो निम्नलिखित रूप में हैं :–

> "7. इस आदेश के निबंधनानुसार चयन ग्रेड केवल उन कर्मचारियों को दिया जाएगा जिनका सेवा अभिलेख संतोषप्रद है । वह सेवा अभिलेख, जो किसी कर्मचारी को ज्येष्ठता के आधार पर प्रोन्नति के लिए पात्र बनाता है, चयन ग्रेड देने के प्रयोजनार्थ संतोषप्रद समझा जाएगा ।
>
> 8. पूर्वगामी पैराओं में किसी बात के होते हुए भी, यदि कोई कर्मचारी इस आशय का आदेश जारी किए जाने पर प्रोन्नति छोड़ देता है तो उसे इस आदेश के अधीन दूसरा या तीसरा चयन ग्रेड नहीं

दिया जाएगा ।

9. चयन ग्रेड दिए जाने से न तो काडर में की ज्येष्ठता और न ही काडर में प्रत्येक प्रवर्ग के पदों की स्वीकृत संख्या पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ।

10. यदि कोई पात्र कर्मचारी इस आदेश के निबंधनानुसार सीधे ही दूसरे या तीसरे चयन ग्रेड के लिए हकदार हो जाता है तो उसका वेतन दूसरा या तीसरा चयन ग्रेड दिए जाने से ठीक पूर्व लिए जा रहे वेतन के प्रति निर्देश से सीधे ही, यथास्थिति, दूसरे या तीसरे चयन ग्रेड में नियत किया जाएगा ।"

4. पूर्वोक्त परिपत्र कतिपय सेवा प्रवर्गों पर वृद्धिरुद्धता से बचने के लिए इस उद्देश्य से जारी किया गया था कि वृद्धिरुद्ध कर्मचारी को 9, 18 और 27 वर्ष की सेवा पूरी करने के पश्चात् रिक्तियों की कमी के कारण प्रोन्नति प्राप्त किए बिना प्रोन्नति वाले पद पर उपलब्ध अगला वेतनमान प्राप्त हो जाना चाहिए ।

5. प्रत्यर्थियों ने कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर राज्य सरकार की उस कार्रवाई को चुनौती दी जिसके द्वारा उन्हें सेवा में उनके नियमित किए जाने से पूर्व की अवधि के लिए वेतनवृद्धियां देने से इनकार किया गया था । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने वे रिट याचिकाएं खारिज कर दीं और इसे 1996 की खंड न्यायपीठ सिविल विशेष अपील सं. 377 में **चन्द्र शेखर** बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य**[1] चुनौती दिए जाने पर खंड न्यायपीठ ने इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

"अपीलार्थी वर्ष 1986 से 1993 तक अपने नियुक्ति-पत्रों में दिए गए वेतनमान में अस्थायी कर्मचारी के रूप में सेवा में बने रहे । उस वेतनमान में वह वेतनवृद्धि उपदर्शित थी जो वे कालिक रूप से अर्जित करेंगे । इस प्रकार, अपीलार्थी नियोजन की संविदा के आधार पर भी उस अवधि के दौरान जब वे अपनी सेवा में नियमितीकरण से पूर्व अस्थायी हैसियत में थे, वेतनवृद्धियां प्रदान किए जाने के हकदार थे । इसलिए, वे नियमों से असंबद्ध रहते हुए भी सेवा संविदा के आधार पर वेतनवृद्धियां प्रदान किए जाने के हकदार थे ।

---

[1] 1996 की खंड न्यायपीठ सिविल विशेष अपील सं. 377 जिसका विनिश्चय तारीख 6 जनवरी, 1998 को किया गया ।

अतः हम इन अपीलों को मंजूर करते हैं, विद्वान् एकल न्यायाधीश के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त करते हैं और प्रत्यर्थी-राज्य को यह निदेश देते हैं कि वह अपीलार्थियों के नियुक्ति पत्रों में उल्लिखित वेतनमानों के आधार पर उन्हें वेतनवृद्धियों के बकाया का भुगतान करे । यह आज से छह मास के भीतर किया जाना है । इस आदेश के परिणामस्वरूप, अपीलार्थियों को नियमितीकरण के पश्चात् दिए गए वेतनमानों में आवश्यक पुनर्नियतन भी उपरोक्त अवधि के भीतर किया जाएगा ।"

6. उक्त आदेश को 1998 की सिविल अपील सं. 3441 और अन्य संसक्त अपीलों में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी । इस न्यायालय ने तारीख 27 सितम्बर, 2001 के आदेश द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित करके उन अपीलों को खारिज कर दिया :–

"इन अपीलों में उठाया गया प्रश्न यह है कि क्या प्रत्यर्थी अपनी अस्थायी सेवा की अवधि के दौरान वेतनवृद्धियां प्रदान करने के हकदार नहीं होंगे । इस प्रश्न का उत्तर निश्चित रूप से सेवा के उन निबंधनों पर निर्भर करेगा जिन पर उन्हें नियोजित किया गया था ।

उच्च न्यायालय ने मामले के इस पहलू की परीक्षा की है और यह निष्कर्ष निकाला है कि उन्हें एक विशिष्ट पद पर नियुक्त किया गया है जिसका एक काल वेतनमान है । यदि ऐसा है और यदि उन्हें उसमें वेतनवृद्धियां देने के संबंध में उद्भूत फायदे दिए गए थे तो हम यह नहीं समझते कि उच्च न्यायालय द्वारा किए गए आदेश में कोई कमी है । अतः, ये अपीलें खारिज की जाती हैं ।"

7. सिविल अपीलें खारिज किए जाने के पश्चात्, राज्य सरकार ने तारीख 17 अप्रैल, 2002 को एक परिपत्र जारी किया जिसके द्वारा उन्हें वार्षिक ग्रेड वेतनवृद्धियां दी गई थीं । तारीख 29 जून, 2009 को राजस्थान सरकार ने एक स्पष्टीकारक परिपत्र जारी किया जिसमें चयन ग्रेड दिए जाने की पद्धति तथा 9, 18 और 27 वर्ष की संगणना करने की रीति विहित की गई थी । इसमें तारीख 25 जनवरी, 1992 के पूर्ववर्ती परिपत्र और वित्त विभाग के तारीख 3 अप्रैल, 1993 के आदेश सं. एफ.20(1)एफ.डी.(ग्रे.2)/92 के प्रति निर्देश किया गया जिसके द्वारा यह स्पष्ट किया गया था कि चयन ग्रेड दिए जाने के प्रयोजनार्थ सेवा की गणना उस तारीख से की जानी थी जिसको कर्मचारी को सुसंगत भर्ती

नियमों में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार विद्यमान काडर/सेवा में नियमित रूप से नियुक्त किया गया था । पूर्ववर्ती सरकारी आदेश का उल्लेख करते हुए यह कहा गया था कि उसमें यह स्पष्ट किया गया था कि उस पद के भर्ती नियमों के अनुसार नियमित नियुक्ति से पूर्व की गई सेवा की अवधि की गणना चयन ग्रेड देने के लिए नहीं की जाएगी । 2009 वाले परिपत्र में तदर्थ नियुक्ति की तारीख से चयन ग्रेड देने संबंधी कर्मचारियों के दावे और राज्य सरकार की कार्रवाई के प्रति निर्देश किया गया था । उसमें यह भी कहा गया था कि राज्य सरकार **राजस्थान राज्य और अन्य** बनाम **जगदीश नारायण चतुर्वेदी**[1] वाले मामले में किस प्रकार इस न्यायालय में आई । अंततोगत्वा, सक्षम प्राधिकारियों को कतिपय निदेश जारी किए गए थे जिन्हें यहां उद्धृत करना उचित होगा :–

> "इसलिए चयन ग्रेड की मंजूरी देने के लिए सक्षम सभी प्राधिकारियों को आदिष्ट किया जाता है कि ऐसे मामले का पुनर्विलोकन किया जाए जिनमें राज्य कर्मचारियों को सुसंगत भर्ती नियमों में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार काडर/सेवा में नियमित नियुक्ति से पूर्व की गई सेवा अर्थात्, तदर्थ सेवा/निर्धारित कर्म सेवा/दैनिक मजदूरी इत्यादि की गणना करके चयन ग्रेड दिए गए हैं । ऐसे कर्मचारियों को सुसंगत भर्ती नियमों में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार काडर/सेवा में केवल नियमित नियुक्ति के पश्चात् उनके द्वारा की गई सेवा की गणना करके चयन ग्रेड दिए जा सकेंगे । माननीय उच्चतम न्यायालय के तारीख 8 मई, 2009 के निर्णय की प्रति संलग्न की जाती है ।
>
> ऐसे सभी मामलों का 31 जुलाई, 2009 तक पुनर्विलोकन और विनिश्चय अवश्य किया जाना चाहिए और इसकी अनुपालना रिपोर्ट प्रशासनिक विभाग को 10 अगस्त, 2009 तक अवश्य संसूचित कर दी जानी चाहिए । प्रशासनिक विभाग यह सुनिश्चित करेगा कि पूर्वोक्त आदेशों का अनुपालन उसके अधीन सभी नियुक्ति प्राधिकारियों द्वारा समय पर कर लिया जाए । इन आदेशों का अनुपालन न करने की दशा में प्रशासनिक विभाग व्यतिक्रमी प्राधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई कर सकेगा ।
>
> तथापि, सुसंगत भर्ती नियमों में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार

---

[1] (2009) 12 एस. सी. सी. 49.

काडर/सेवा में नियमित नियुक्ति से पूर्व की गई सेवा को गणना में लेकर उन्हें चयन ग्रेड दिए जाने के कारण संबंधित कर्मचारियों द्वारा लिए गए अधिक संदाय की वसूली केवल 30 जून, 2009 तक की अवधि के लिए की जानी है । तारीख 1 जुलाई, 2009 से वेतन और भत्ते का संदाय इस आदेश के अनुसार वेतन की पुनरीक्षित दरों के आधार पर किया जाएगा ।'

8. जैसा कि तथ्यात्मक पृष्ठभूमि से प्रदर्शित होगा, प्रत्यर्थियों ने इस आधार पर 18 वर्ष पूरे करने पर चयन ग्रेड देने के लिए अभ्यावेदन प्रस्तुत किया कि उन्हें पहला चयन वेतनमान तारीख 20 जुलाई, 2000 के आदेश द्वारा उनकी आरंभिक नियुक्ति की तारीख से दिया गया था किन्तु उन्हें वर्ष 2009 में दूसरे चयन ग्रेड का फायदा नहीं दिया गया था । उक्त अभ्यावेदन तारीख 10 मार्च, 2010 के आदेश द्वारा नामंजूर कर दिया गया था जिसके लिए प्रत्यर्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2010 की एकल न्यायपीठ सिविल रिट याचिका सं. 4185 फाइल की जिसमें उनकी आरंभिक नियुक्ति की तारीख से या उस तारीख से जब कुछ याचियों से कनिष्ठ व्यक्तियों को चयन ग्रेड दिया गया था, चयन ग्रेड देने के लिए परमादेश की रिट जारी करने की प्रार्थना की गई थी । राज्य सरकार द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ, यह कथन करते हुए प्रति-शपथपत्र फाइल किया गया था कि यह संविवाद **जगदीश नारायण चतुर्वेदी** (उपर्युक्त) और अन्य संसक्त मामलों में प्रतिपादित विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए अब अनिर्णीत विषय नहीं रहा है । इन प्रकथनों से इनकार करते हुए कि यह मामला **चन्द्र शेखर** (उपर्युक्त) वाले मामले में वेतनवृद्धियां देने से संबंधित मुकदमेबाजी के अंतर्गत नहीं आता है, दृढ़तापूर्वक यह कथन किया गया था कि उक्त संविवाद का संबंध इस बात से भी है कि क्या कर्मचारी अस्थायी सेवा अवधि के दौरान वेतनवृद्धियों के हकदार थे, जो कि चयन ग्रेड दिए जाने से भिन्न है जो कि परिपत्रों में प्रगणित आदेशों द्वारा शासित होता है । स्पष्ट रूप से यह प्राख्यान किया गया था कि चयन ग्रेड देने के प्रयोजनार्थ सेवा के वर्षों की गणना करते समय अस्थायी सेवा को शामिल नहीं किया जाना था ।

9. यह ध्यान देने योग्य है कि **जगदीश नारायण चतुर्वेदी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के पश्चात् राज्य सरकार ने तारीख 20 अगस्त, 2010 को एक परिपत्र जारी किया था जिसमें वर्ग IV, अनुसचिवीय और अधीनस्थ सेवाओं में के कर्मचारियों और एकल पद धारित करने वाले अन्य कर्मचारियों के लिए चयन ग्रेड और चयन ग्रेडों में वेतन

नियत करने के बारे में विहित किया गया था जो कि **जगदीश नारायण चतुर्वेदी** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय के अनुसार जारी किया गया था । पूर्ववर्ती परिपत्रों में की अभिधारणाओं को स्पष्ट करते हुए निम्न प्रकार अधिकथित किया गया था :–

"माननीय उच्चतम न्यायालय के तारीख 8 मई, 2009 वाले इस निर्णय के अनुसार तदर्थ सेवा की अवधि की गणना चयन ग्रेड देने के प्रयोजनार्थ नहीं की जानी है । राज्य सरकार ने इसका अनुपालन करते हुए तारीख 29 जून, 2009 का आदेश एफ. 16(2)एफ. डी./नियम/98 जारी किया था जिसमें तारीख 1 जुलाई, 2009 से चयन ग्रेड में वेतन नियत करने की पद्धति विहित की गई थी ।

इस संबंध में अभ्यावेदन प्राप्त हुए हैं कि तारीख 29 जून, 2009 के आदेश के परिणामस्वरूप निम्नतर वेतन पाने वाले कर्मचारियों की उपलब्धियों में पर्याप्त कमी आई है जिससे वित्तीय कठिनाई उत्पन्न हो गई है ।

तदनुसार, राज्य सरकार ने इस मामले पर पुनर्विचार किया है और तारीख 29 जून, 2009 के समसंख्यांक वाले आदेश का आंशिक उपांतरण करते हुए राज्यपाल ने यह आदेश किया है कि ऐसे मामलों का पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता है जिनमें सरकारी सेवकों को तदर्थ सेवावधि की गणना करके तारीख 29 जून, 2009 के आदेश से पूर्व चयन ग्रेड दे दिया गया है । तथापि, जहां ऐसे कर्मचारियों को नियमों के अधीन 29 जून, 2009 के पश्चात् अतिरिक्त चयन ग्रेड अनुज्ञेय हो जाता है वहां माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेशों के अनुसार तदर्थ सेवावधि को अपवर्जित करके वह ग्रेड दिया जाएगा । उदाहरणार्थ, यदि किसी कर्मचारी ने 9 वर्ष की सेवा पूरी करने पर (मान लीजिए तीन वर्ष की तदर्थ सेवा को सम्मिलित करने के पश्चात्) 29 जून, 2009 से पूर्व पहले चयन ग्रेड का लाभ ले लिया है तो 29 जून, 2009 को या उसके पश्चात् 18 वर्ष की सेवा पूरी करने पर उसे अगला चयन ग्रेड 18 वर्ष में तीन वर्ष की तदर्थ सेवा जोड़ने, अर्थात् 18+3 = 21 वर्ष के पश्चात् ही दिया जाएगा ।

सभी लंबित मामलों को इन आदेशों के अनुसार विनिश्चित किया जाएगा ।

तारीख 29 जून, 2009 के समसंख्यांक वाले आदेश के पश्चात्

विनिश्चित चयन ग्रेड देने के मामलों का पुनर्विलोकन किया जा सकेगा और उन्हें इस आदेश के उपबंधों के अनुसार पुनरीक्षित किया जा सकेगा । इसी प्रकार, सरकारी सेवकों के पेंशन संबंधी ऐसे मामले भी, जिन्हें तारीख 29 जून, 2009 के आदेश के अधीन वेतन के पुनर्नियतन के पश्चात् अंतिम रूप दिया गया है, पुनर्विलोकित और संशोधित किए जा सकेंगे । तथापि, ऐसे व्यक्तियों के मामलों को पुनः नहीं खोला जाएगा जो 29 जून, 2009 से पहले सेवानिवृत्त हो चुके हैं ।"

10. जबकि स्थिति इस प्रकार थी, तब प्रत्यर्थियों द्वारा तैयार की गई रिट याचिका रिट न्यायालय के समक्ष तारीख 11 नवम्बर, 2010 को सुनवाई के लिए आई । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित आदेश पारित किया :–

"पक्षकारों के काउन्सेल इस बात से सहमत हैं कि रिट के लिए इस याचिका में अंतर्वलित संविवाद तारीख 6 जनवरी, 1998 को विनिश्चित 1996 की खंड न्यायपीठ सिविल विशेष अपील (रिट) सं. 377 में पारित इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय को ध्यान में रखते हुए (चन्द्र शेखर **बनाम** राजस्थान राज्य और अन्य), जिसकी अभिपुष्टि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 27 सितम्बर, 2001 को 1998 की सिविल अपील सं. 3441 (राजस्थान राज्य और एक अन्य **बनाम** चन्द्र शेखर) को खारिज करके कर दी गई थी, अब अनिर्णीत विषय नहीं रहा है ।

मैंने भी मामले के अभिलेख की परीक्षा की है और **चन्द्र शेखर** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का भी परिशीलन किया है ।

वास्तव में, रिट के लिए फाइल की गई इस याचिका में अंतर्वलित संविवाद उपर्युक्त निर्णय के अंतर्गत आता है । तदनुसार, रिट के लिए फाइल की गई यह याचिका भी 1996 की खंड न्यायपीठ सिविल अपील (रिट) सं. 377 (चन्द्र शेखर **बनाम** राजस्थान राज्य और अन्य) में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय के निबंधनानुसार मंजूर की जाती है ।"

11. यह प्रकथन करते हुए पुनर्विलोकन आवेदन फाइल किया गया था कि यह संविवाद **चन्द्र शेखर** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय के अंतर्गत नहीं आता

है बल्कि वह **जगदीश नारायण चतुर्वेदी** (उपर्युक्त) वाले निर्णय के अंतर्गत आता है । तथापि, पुनर्विलोकन संबंधी उक्त याचिका विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 7 फरवरी, 2011 वाले आदेश द्वारा खारिज कर दी गई थी ।

12. राज्य सरकार ने इससे असंतुष्ट होकर 2011 की खंड न्यायपीठ सिविल विशेष अपील (रिट) सं. 835 फाइल की और खंड न्यायपीठ ने तारीख 6 जुलाई, 2011 को विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश को उद्धृत करने के पश्चात् यह राय व्यक्त की कि चूंकि वह एक सम्मत आदेश था इसलिए कोई अपील फाइल नहीं की जा सकती थी । खंड न्यायपीठ ने यह मत अपनाते हुए अपील खारिज कर दी । इसके पुनर्विलोकन के लिए किया गया आवेदन सफल नहीं हो सका था ।

13. रिट न्यायालय के विनिश्चय की भेद्यता को प्रश्नगत करते हुए डा. सिंघवी द्वारा यह दलील दी गई है कि जब पुनर्विलोकन द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश की जानकारी में यह बात लाई गई थी कि आदेश में जिस विनिश्चय के प्रति निर्देश किया गया था उसका प्रश्नगत मुकदमे से कोई संबंध नहीं था बल्कि वह **जगदीश नारायण चतुर्वेदी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के बाध्यकारी पूर्वनिर्णय के अंतर्गत आता था तो उसे पुनर्विलोकन आवेदन मंजूर करना चाहिए था और विधि के अनुसार निर्णय लेखबद्ध करने के लिए विनिश्चय पारित करने की कार्यवाही करनी चाहिए थी । उसके द्वारा इस बात पर भी जोर दिया गया है कि खंड न्यायपीठ ने अंतर-न्यायालीय अपील पर कार्यवाही करते समय इस बात को ध्यान में नहीं रखा था कि राज्य ने पुनर्विलोकन आवेदन फाइल किया था, जो कि पहले ही इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि राज्य को यह कहने की स्वतंत्रता नहीं थी कि वह संविवाद **चन्द्र शेखर** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय के अंतर्गत नहीं आता था और यह मुद्दा केवल अपील में ही उठाया जा सकता था । राज्य के विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि खंड न्यायपीठ ने अपील के संबंध में कार्यवाही करते समय केवल यह लेखबद्ध किया कि आदेश पक्षकारों की सहमति से पारित किया गया था और इसलिए उसने इसमें कोई हस्तक्षेप करना अपेक्षित नहीं समझा और अपीलार्थी प्रथमतः रिट न्यायालय में समावेदन करने और इसके बाद अंतर-न्यायालीय अपील में अधिकारिता का अवलंब लेने के लिए स्वतंत्र थे जिससे स्पष्टतः त्रुटिपूर्ण पहल प्रतिपादित होती है । उसके द्वारा आगे इस बात पर जोर दिया गया है कि जब उस बाध्यकारी पूर्वनिर्णय को देखने से, जो राज्य और समरूप स्थिति वाले कर्मचारियों के बीच विवाद से संबंधित

है, तब रिट न्यायालय को उसे संक्षिप्त रूप से इसलिए खारिज नहीं करना चाहिए था कि वह आदेश सहमति के आधार पर पारित किया गया था ।

14. प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होते हुए विद्वान् काउन्सेल सुश्री ऐश्वर्या भाटी ने यह दलील दी कि चूंकि राज्य ने उस स्थिति को मान लिया था इसलिए वह उससे मुकर नहीं सकता था और प्रत्यर्थियों को उच्च न्यायालय के विनिश्चय के फायदों से वंचित करने के लिए भिन्न तर्क नहीं दे सकता था क्योंकि किसी आदर्श नियोजक के लिए ऐसा करना उचित नहीं है । उसकी ओर से यह दलील दी गई कि जब पहला चयन ग्रेड आरंभिक नियुक्ति की तारीख से 9 वर्ष पूरे करने के पश्चात् दिया गया था तब उक्त तारीख को न मानने और नियमितीकरण की तारीख, अर्थात् 28 अप्रैल, 1993 से आरंभ होने की तारीख नियत करने का कोई न्यायौचित्य नहीं है क्योंकि इससे अत्यधिक कठिनाई कारित होगी और कुछ प्रत्यर्थी, हालांकि वे पात्र हैं, 27 वर्ष पूरे करने पर चयन ग्रेड के फायदे से वंचित हो जाएंगे जिससे उनके पेंशन संबंधी फायदों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ।

15. प्रारंभ में ही हम यह स्पष्ट कर सकते हैं कि **चन्द्र शेखर** (उपर्युक्त) वाले मामले में किए गए विनिश्चय का संबंध नियमितीकरण से पूर्व वाली अवधि के लिए वेतनवृद्धियां देने से है । इसका चयन ग्रेड देने से कोई संबंध नहीं है । वे परिपत्र, जिन्हें हमने इसमें इसके पूर्व उद्धृत किया है, चयन ग्रेड देने के संबंध में हैं । इस पृष्ठभूमि में, यह देखा जाना है कि इस न्यायालय द्वारा **जगदीश नारायण चतुर्वेदी** (उपर्युक्त) वाले मामले में क्या अधिकथित किया गया है । उक्त मामले में, दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ इस मुद्दे पर विचार कर रही थी कि क्या तदर्थ नियुक्तियों या दैनिक मजदूरी या निर्धारित कर्म पर आधारित नियुक्तियों को तारीख 25 जनवरी, 1992 और 17 फरवरी, 1998 के सरकारी आदेशों द्वारा यथा-अनुध्यात भर्ती नियमों में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार काडर/सेवा में की गई नियुक्तियों के रूप में माना जा सकता था । राज्य की ओर से यह दलील दी गई थी कि वृद्धिरुद्ध फायदे नियमितीकरण की तारीख से दिए गए थे और इस प्रयोजनार्थ **हरियाणा राज्य** बनाम **हरियाणा वैटेनरी एंड ए. एच. टी. एस. एसोसिएशन और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया था । परिपत्रों में प्रयोग की गई भाषा के प्रति निर्देश किया गया था जिनमें "नियुक्तियां विद्यमान काडर/सेवा से संबंधित हैं"

---

[1] (2000) 8 एस. सी. सी. 4.

शब्दों का प्रयोग किया गया है । न्यायालय ने राजस्थान अधिशेष कार्मिक आमेलन नियम, 1969 के उपबंधों और **हरियाणा वैनेटरी** (उपर्युक्त) वाले निर्णय के विभिन्न पैराओं और **राम गणेश त्रिपाठी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले विनिश्चय के प्रति निर्देश किया और निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया :–

> "18. किसी अभ्यर्थी को सेवा का सदस्य होने के लिए चार शर्तें अवश्य पूरी करनी चाहिए, अर्थात् –
>
> (i) उसकी नियुक्ति अधिष्ठायी हैसियत में अवश्य होनी चाहिए ;
>
> (ii) उसकी नियुक्ति सेवा में किसी पद पर, अर्थात् किसी अधिष्ठायी रिक्ति में होनी चाहिए ;
>
> (iii) उसकी नियुक्ति नियमों के अनुसार होनी चाहिए ;
>
> (iv) उसकी नियुक्ति उस स्रोत के लिए विहित कोटे के भीतर होनी चाहिए ।
>
> तदर्थ नियुक्ति हमेशा किसी पद पर नियुक्ति होती है न किसी काडर/सेवा में होती है और वह नियमित नियुक्ति के लिए भर्ती नियमों में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार भी नहीं होती है । यद्यपि तारीख 25 जनवरी, 1992 के सरकारी आदेश के पैरा 3 में 'विद्यमान काडर/सेवा में नियुक्ति' शब्दों से पूर्व 'नियमित' विशेषण का प्रयोग नहीं किया गया था जिसमें चयन वेतनमान का उपबंध किया गया था तथापि, उसमें उल्लिखित नियुक्ति स्पष्ट रूप से भर्ती नियमों के अनुसार की जाने वाली नियमित नियुक्ति के लिए आवश्यक थी । सरकारी आदेश के उक्त पैरा में जो कुछ विवक्षित था, जब उसमें किसी काडर/सेवा में नियुक्ति के प्रति निर्देश किया गया था, उसे मद 2 के संबंध में किए गए तारीख 3 अप्रैल, 1993 के स्पष्टीकरण द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है । यही बात तारीख 17 फरवरी, 1998 के सरकारी आदेश के पैरा 3 में शामिल की गई है ।'

न्यायालय ने आगे कार्यवाही करते हुए अंततः इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

---

[1] (1997) 1 एस. सी. सी. 621.

"**हरियाणा वैटेनरी** (उपर्युक्त) वाले मामले के अलावा, पंजाब राज्य **बनाम** ईश्वर सिंह [(2002) 10 एस. सी. सी. 674] और पंजाब राज्य **बनाम** गुरदीप कुमार उप्पल [(2003) 11 एस. सी. सी. 732] वाले मामलों में कथित विधिक स्थिति स्पष्ट रूप से यह अधिकथित करती है कि अपेक्षित सेवावधि की गणना करते समय तदर्थ सेवा की अवधि को छोड़ दिया जाना है ।"

16. उपर्युक्त विधिक प्रतिपादना से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि चयन ग्रेड देने के लिए अवधि की गणना सेवा में नियमित किए जाने की तारीख से न कि उससे पूर्व की जानी है । इस प्रकार, इस न्यायालय का पूर्वोक्त निर्णय उसी परिपत्र के संबंध में है और वह समस्त दृष्टिकोणों से एक बाध्यकारी पूर्वनिर्णय है ।

17. विधि की दृष्टि से यह सुस्थापित है कि विधि के विरुद्ध कोई वचन-विबंध नहीं हो सकता है । किसी न्यायालय में दी गई यह सहमति कि कोई संविवाद किसी ऐसे निर्णय के अंतर्गत आता है जो किसी भी प्रकार से उसे लागू नहीं होता है और उसका संबंध किसी भिन्न क्षेत्र से है, पक्षकार को यह मुद्दा उठाने से विबद्ध नहीं कर सकती कि वह गलत तौर पर उद्धृत किया गया था ।

18. **भारत संघ** बनाम **हीरा लाल और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सरकारी अधिवक्ता द्वारा विधि के प्रश्न के संबंध में दी गई छूट के संबंध में यह नहीं कहा जा सकेगा कि वह सरकार पर आबद्धकर है ।

19. **बी. एस. बजवा और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने विद्वान् अपर महाधिवक्ता द्वारा दी गई छूट के आधार पर उसके प्रभाव पर विचार किए बिना या उसके पूर्ववर्ती निष्कर्ष से असंगत होने के बारे में विचार किए बिना अनुतोष प्रदान किया था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि जिस मुद्दे के संबंध में छूट दी गई थी वह विधि से संबंधित था इसलिए वह राज्य पर बाध्यकर नहीं हो सकती और

---

[1] (1996) 10 एस. सी. सी. 574.

[2] (1998) 2 एस. सी. सी. 523.

इसलिए राज्य उसे वापस लेने के लिए स्वतंत्र था और उच्च न्यायालय में ही पुनर्विलोकन याचिका फाइल करके ऐसा किया गया था ।

20. इस प्रकार कथन करने के पश्चात् हम इस समय इस बात पर विचार करेंगे कि क्या रिट न्यायालय का पुनर्विलोकन आवेदन खारिज करना न्यायोचित था । खारिजी आदेश में केवल यह अवेक्षा की गई है कि आदेश सहमति के आधार पर पारित किया गया था और इसलिए यह पुनर्विलोकन की विषयवस्तु नहीं हो सकता था । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने, जैसा कि प्रतीत होता है, राज्य के पक्षकथन का अधिमूल्यन करना उचित नहीं समझा और उसने पूर्णतः संक्षिप्त आदेश पारित किया ।

21. **शिवदेव सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में संविधान पीठ ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा अपने आदेश का पुनर्विलोकन करने की अंतर्निहित शक्तियों के संबंध में विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया कि संविधान के अनुच्छेद 226 में की कोई बात किसी उच्च न्यायालय द्वारा पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करने से प्रविरत नहीं करती जो न्यायहानि को रोकने या उसके द्वारा कारित गंभीर और सुस्पष्ट गलतियों को सुधारने के लिए सर्वांगीण अधिकारिता वाले प्रत्येक न्यायालय में अंतर्निहित है ।

22. **अरीबाम तुलेश्वर शर्मा** बनाम **अरीबाम पिशाक शर्मा और अन्य**[2] वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने न्यायमूर्ति चिन्नप्पा रेड्डी की ओर से निर्णय सुनाते हुए इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "जैसा कि इस न्यायालय द्वारा शिवदेव सिंह **बनाम** पंजाब राज्य वाले मामले में मत व्यक्त किया है, यह सही है संविधान के अनुच्छेद 226 में ऐसी कोई बात नहीं है जो उच्च न्यायालय को पुनर्विलोकन की उस शक्ति का प्रयोग करने से प्रविरत करती है जो न्यायहानि को रोकने या उसके द्वारा कारित गंभीर और सुस्पष्ट गलतियों को सुधारने के लिए सर्वांगीण अधिकारिता वाले प्रत्येक न्यायालय में अंतर्निहित है । किन्तु पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करने की निश्चित सीमाएं हैं । पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग ऐसी नई और महत्वपूर्ण बात या साक्ष्य का पता लगने पर किया जा सकता है जो

---

[1] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1909.

[2] (1979) 4 एस. सी. सी. 389.

कि सम्यक् तत्परता बरतने के पश्चात् पुनर्विलोकन की ईप्सा करने वाले व्यक्ति की जानकारी के भीतर नहीं था या उस समय जब आदेश किया गया था, उसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था; इसका प्रयोग वहां किया जा सकता है जहां अभिलेख को देखने मात्र से कुछ गलती या त्रुटि कारित की गई प्रतीत होती है; इसका प्रयोग किसी सदृश आधार पर भी किया जा सकता है । किन्तु इसका प्रयोग इस आधार पर नहीं किया जा सकता है कि वह विनिश्चय गुणागुण के आधार पर गलत था । वह किसी अपील न्यायालय का क्षेत्राधिकार होगा । पुनर्विलोकन की शक्ति को अपीली शक्तियों से भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए जो किसी अपील न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालय द्वारा कारित सभी रीति की त्रुटियों में सुधार करने के लिए समर्थ बना सकती है ।"

23. **मैसर्स तुंगभद्रा इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड** बनाम **आन्ध्र प्रदेश सरकार, (जिसका प्रतिनिधित्व उपायुक्त, वाणिज्य-कर द्वारा किया गया था)**[1] वाले मामले में पुनर्विलोकन की संकल्पना पर विचार करते हुए न्यायालय ने निम्न प्रकार राय व्यक्त की :–

"कोई पुनर्विलोकन किसी भी अर्थ में गुप्त रूप में अपील नहीं है जिसके द्वारा गलत विनिश्चय की पुनः सुनवाई की जाती है और उसमें सुधार किया जाता है बल्कि वह केवल प्रत्यक्ष त्रुटि के कारण ही किया जाता है । हम यह नहीं समझते कि इससे इस अंतर पर सर्वांगपूर्ण या किसी भी प्रकार से विस्तारपूर्वक विचार करने का उचित अवसर मिलता है किन्तु हमारे लिए यह कहना ही पर्याप्त होगा कि जहां कोई व्यक्ति किसी विस्तृत तर्क के बिना त्रुटि निकाल सकता है और यह कह सकता है कि विधि का यह सारवान् विषय है जो प्रकट रूप से दिखाई देता है और उसके बारे में युक्तियुक्त रूप से कोई दो राय नहीं मानी जा सकती है वहां अभिलेख को देखने से ही प्रकट त्रुटि का स्पष्ट मामला साबित हो जाएगा ।"

24. **मैसर्स नार्दर्न इंडिया कैटरर्स (इंडिया) लिमिटेड** बनाम **दिल्ली का उप-राज्यपाल**[2] वाले मामले में न्यायमूर्ति आर. एस. पाठक ने (जैसे कि माननीय न्यायमूर्ति तब थे) पुनर्विलोकन की अधिकारिता के बारे में कथन

---

[1] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1372.

[2] (1980) 2 एस. सी. सी. 167.

करते हुए इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "..... यह कि यह विवाद से परे है कि पुनर्विलोकन कार्यवाही की तुलना मामले की मूल सुनवाई से नहीं की जा सकती है और न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की अंतिमता पर वहां के सिवाय पुनर्विचार नहीं किया जाएगा जहां इससे पूर्व न्यायिक भ्रांति के कारण सुस्पष्ट लोक या प्रत्यक्ष गलती या इस जैसी गंभीर त्रुटि उत्पन्न हुई हो ।"

25. इस बात का मूल्यांकन करने के लिए कि अभिलेख को देखने से ही प्रकट त्रुटि कब गठित होती है, **सत्यनारायण लक्ष्मीनारायण हेगड़े** बनाम **मल्लिकार्जुन भावनप्पा तिरुमाले**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की मताभिव्यक्तियां महत्वपूर्ण हैं :–

> "ऐसी त्रुटि को, जिसे उन मुद्दों पर, जहां प्रकटतः दो राय हो सकती हैं, बहस की लंबी प्रक्रिया द्वारा साबित किया जाना होता है, अभिलेख को देखने से ही प्रकट त्रुटि नहीं कहा जा सकता है । जहां अभिकथित त्रुटि स्वतः प्रमाण से दूर है और यदि वह सिद्ध की जा सकती है और उसे लंबी और जटिल बहस द्वारा साबित किया जाना है तो ऐसी त्रुटि को उत्प्रेषण की रिट जारी करने के लिए वरिष्ठ न्यायालय की शक्तियों को शासित करने वाले नियम के अनुसार ऐसी रिट द्वारा ठीक नहीं किया जा सकता है ।"

26. वर्तमान मामले में, जैसा कि तथ्यात्मक आधार से प्रकट होता है, पुनर्विलोकन के आवेदन के लिए विवेचन की लंबी प्रक्रिया अपेक्षित नहीं थी । इसके लिए गुणागुण के आधार पर विचार करना अपेक्षित नहीं था जो कि अपील न्यायालय का क्षेत्राधिकार है । स्पष्टतः, यह प्रकट और सुस्पष्ट त्रुटि थी । एक ऐसी गलत नजीर को उद्धृत किया गया था जिसका इस मुकदमे से कोई संबंध नहीं था और उसे स्वीकार कर लिया गया था । इससे पूर्व विद्यमान बाध्यकारी पूर्वनिर्णय को अनदेखा कर दिया गया था । रिट न्यायालय को देखने मात्र से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए था कि वह विनिश्चय गलत नजीर के आधार पर दिया गया था । यह त्रुटि स्वतः स्पष्ट थी । जब ऐसी स्वतः स्पष्ट त्रुटियां न्यायालय की जानकारी में आती हैं और उन्हें पुनर्विलोकन अधिकारिता या वापस मंगाने संबंधी अधिकारिता का

---

[1] ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 137.

प्रयोग करके, जो कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन सर्वांगीण अधिकारिता का एक पहलू है, सुधारा नहीं जाता है तो न्याय की गंभीर हानि कारित होती है । हम यह मानते हैं कि खंड न्यायपीठ ने अपील में निर्णयों पर दृष्टिपात करना भी आवश्यक नहीं समझा और स्वयं को इस तथ्य से अवगत नहीं कराया कि पुनर्विलोकन के लिए आवेदन इससे पूर्व विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष फाइल किया गया था और वह खारिज हो गया था । जैसा कि प्रतीत होता है, उसने अल्पकालिक और संक्षिप्त रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(3) में प्रतिष्ठापित सिद्धांत पर विचार किया, जिसके फलस्वरूप उसके द्वारा दिया गया विनिश्चय विधिक दृष्टि से भेद्य हो गया है ।

27. एक अन्य पहलू का भी, विशेष रूप से मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उल्लेख करना आवश्यक है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस निवेदन को स्वीकार करते हुए रिट याचिका मंजूर कर ली कि यह संविवाद **चन्द्र शेखर** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय के अंतर्गत आता था । विद्वान् एकल न्यायाधीश का आदेश राज्य के विद्वान् काउन्सेल द्वारा दी गई छूट के आधार पर लेखबद्ध किया गया है । राज्य द्वारा फाइल किया गया प्रति-शपथपत्र पूर्णतः उक्त कथन के प्रतिकूल था । यह भी अवलोकनीय है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिलिखित भी किया है कि उसने अभिलेख का परिशीलन किया था । ऐसा प्रतीत नहीं होता है क्योंकि प्रति-शपथपत्र और उससे संलग्न दस्तावेज़ों से स्पष्ट रूप से यह प्रकट होता है कि राज्य का पक्षकथन यह था कि **चन्द्र शेखर** (उपर्युक्त) वाले मामले का संविवाद उस अवधि के लिए, जब कर्मचारी को उस काडर में नियमित नहीं किया गया था, वेतनवृद्धि देने के संबंध में था और उसका संबंध चयन ग्रेड देने से नहीं था जो नियमितीकरण की तारीख से अवधि की संगणना करने के प्रयोजनार्थ ही उत्पन्न होता था । ऐसी दशा में, हमें इस बात पर विचार करना है कि क्या न्यायालय के लिए कम से कम यह देखना आबद्धकर था कि क्या संविवाद निर्दिष्ट विनिश्चय के अंतर्गत आता था अथवा नहीं । हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने **चन्द्र शेखर** (उपर्युक्त) वाले मामले में खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय और 1998 की सिविल अपील सं. 3443 में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश का परिशीलन किया होता तो उसने इस मुकदमे पर एक भिन्न रीति में विचार किया होता । जहां तक विधिक स्थिति से संबंधित छूट का संबंध है, हमने विधिक प्रभाव के बारे में विधिक स्थिति का कथन पहले ही कर दिया है । इसके अलावा,

हम यह समझते हैं कि न्यायालय के किसी कार्य से किसी पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए और यह सूक्ति उचित रूप से लागू हो जाती है कि "न्यायालय के कार्य से किसी की हानि नहीं होती" । यह देखना न्यायालय का कर्तव्य है कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग न किया जाए और यदि कोई कथन करके न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया गया है और उसी न्यायालय, विशेष रूप से रिट न्यायालय को इससे अवगत करा दिया जाता है तो वह हमेशा अपने आदेश को वापस मंगा सकता है क्योंकि वह छूट, जो इसका आधार गठित करती है, त्रुटिपूर्ण है । इसी प्रकार, खंड न्यायपीठ अंतर-न्यायालीय अपील में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(3) के अधीन अनुबद्ध सम्मति डिक्री की संकल्पना का उल्लेख करने की बजाय इस बात की परीक्षा करने से संबंधित स्थापित सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शित होनी चाहिए कि विधि में दी गई छूट सही थी अथवा नहीं । इस संदर्भ में, **सिटी एंड इंडस्ट्रियल डेवेल्पमेंट कारपोरेशन** बनाम **दोसू आर्देशीर भिवंडीवाला और अन्य**[1] वाले निर्णय के उद्धरण का उल्लेख करना लाभप्रद है जिसमें इस न्यायालय ने अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता संबंधी शक्ति को निरूपित करते समय निम्न प्रकार मत अभिव्यक्त किया था :–

> "न्यायालय, अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते समय इस बात पर विचार करने के लिए कर्तव्यबद्ध है कि क्या –
>
> (क) रिट याचिका का न्यायनिर्णयन करने में तथ्य संबंधी कोई जटिल और विवादित प्रश्न अंतर्वलित हैं और क्या उनका संतोषप्रद रूप से समाधान किया जा सकता है ;
>
> (ख) याचिका से सभी तात्विक तथ्य प्रकट होते हैं ;
>
> (ग) याची के पास विवाद के समाधान के लिए कोई अनुकल्पी या प्रभावी उपचार है ;
>
> (घ) अधिकारिता का अवलंब लेने वाला व्यक्ति अस्पष्टीकृत विलंब और प्रमाद का दोषी है ;
>
> (ङ) वह स्पष्टतः परिसीमा संबंधी किसी विधि द्वारा वर्जित है ;

---

[1] (2009) 1 एस. सी. सी. 168.

(च) अनुतोष प्रदान करना लोक नीति के विरुद्ध है या किसी विधिमान्य विधि और अन्य अनेक कारणों द्वारा वर्जित है ।

न्यायालय समुचित मामलों में स्वविवेकानुसार यथास्थिति, राज्य या उसके अभिकरणों को यह निदेश दे सकेगा कि वह न्यायालय के विचारणार्थ सभी सुसंगत तथ्य सही और उचित रूप से प्रस्तुत करते हुए, विशेषकर ऐसे मामलों में जहां लोक राजस्व और लोक हित अंतर्वलित हो, उचित शपथपत्र फाइल करे । ऐसे निदेशों का सदैव राज्य द्वारा अनुपालन करना आवश्यक होता है । किसी लोक विधि उपचार में सामान्य अनुक्रम में इस आधार पर कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता है कि राज्य ने रिट याचिका का विरोध करते हुए प्रति-शपथपत्र फाइल नहीं किया था । इसके अलावा, निरर्थक और स्वतः निष्फल शपथपत्र या सरकारी प्रवक्ताओं द्वारा स्वतः किए गए कथन किसी व्यक्ति को किसी ऐसे लोक विधि उपचार में, जिसके लिए वह विधितः अन्यथा हकदार नहीं है, कोई अनुतोष प्रदान करने का आधार गठित नहीं करते ।"

ऊपर उद्धृत लेखांश से सुव्यक्त रूप से स्पष्ट है और हम सादर उसे दोहराते हैं । हम यह भी जोड़ते हैं किसी गलती को न मानना कोई बहादुरी का कार्य नहीं होता है । इसके विपरीत, इससे अड़ियलपन के प्रति दोषपूर्ण समपर्ण प्रतिबिंबित होता है । किसी व्यक्ति का चरमोत्कर्ष वास्तव में अपनी गलती मान लेने में ही विकसित होता है ।

28. हमारे पूर्ववर्ती विश्लेषण से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होगा कि यह संविवाद **जगदीश नारायण चतुर्वेदी** (उपर्युक्त) वाले निर्णय के अंतर्गत आता है । प्रत्यर्थी, नियमितीकरण से पूर्व सेवा के सदस्य या काडर के भाग नहीं थे और इसलिए चयन ग्रेड से संबंधित परिपत्र का फायदा उन्हें लागू नहीं होता था । इसलिए, अप्रतिरोध्य निष्कर्ष यह है कि वे नियमितीकरण की तारीख से ही चयन ग्रेड के फायदों के पात्र हैं । नौ वर्ष, अठारह वर्ष और सत्ताईस वर्ष की अवधि की संगणना उस तारीख से की जानी है । यह सही है कि हो सकता है कि उन्हें पहला फायदा उस परिपत्र के भ्रामक बोध के कारण और **जगदीश नारायण चतुर्वेदी** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय से भी पूर्व दिया गया हो । किन्तु इस कारण वे उस आधार पर अपने दावे पर जोर देने के हकदार नहीं हो जाएंगे क्योंकि ऐसा **जगदीश नारायण चतुर्वेदी** (उपर्युक्त) वाले मामले में यथा-कथित इस देश की विधि के प्रतिकूल होगा । यह ध्यान देने योग्य है कि राज्य ने, जैसा कि पश्चात्वर्ती

परिपत्र से उपदर्शित होगा, फायदे के प्रत्युद्धरण के लिए कोई कदम न उठाने का विनिश्चय किया है । अतः, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं और अभिनिर्धारित करते हैं कि प्रत्यर्थियों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गई रिट याचिका खारिज की जानी चाहिए और तदनुसार, रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश और अंतर-न्यायालीय अपील में किया गया विनिश्चय अपास्त किए जाते हैं और रिट याचिका खारिज की जाती है ।

29. इस मामले को समाप्त करने से पूर्व हम विधिज्ञ वर्ग के सदस्यों की पावन भूमिका से संबंधित प्रायः कथित सिद्धांतों का वर्णन करने के लिए बाध्य हैं । वकील न्यायालय का एक उत्तरदायी अधिकारी होता है । न्यायालय के अधिकारी के रूप में उसका यह कर्तव्य होता है कि वह न्यायालय की उचित रूप से तैयार रीति के अनुसार सहायता करे । वह किसी अधिवक्ता को समनुदेशित की गई अलंघनीय भूमिका है । **ओ. पी. शर्मा और अन्य** बनाम **पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय**[1] वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अधिवक्ता के नैतिक मानदंड पर, हालांकि किसी भिन्न संदर्भ में विचार करते समय इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "किसी अधिवक्ता से अत्यंत ईमानदारी और सम्मानपूर्वक कार्य करने की प्रत्याशा की जाती है । अधिवक्ता को सभी वृत्तिक कृत्यों में तत्पर होना चाहिए और उसका आचरण भी तत्पर होना चाहिए और विधि की उन अपेक्षाओं के अनुरूप होना चाहिए जिसके द्वारा अधिवक्ता समाज और न्याय पद्धति के परिरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । अधिवक्ता विधि के शासन को कायम रखने और यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्यताधीन होता है कि लोक न्याय प्रणाली अपनी पूर्ण क्षमता के अनुसार कार्य करने में समर्थ हो । किसी अधिवक्ता द्वारा वृत्तिक सदाचारों के सिद्धांतों का किसी भी प्रकार से अतिक्रमण करना दुर्भाग्यपूर्ण और अस्वीकार्य होता है । किसी लघु अतिक्रमण/अवचार को अनदेखा करना लोक न्याय प्रणाली के मूलभूत आधार के प्रतिकूल होता है ।"

30. **संजीव दत्ता, उप-सचिव, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 2. कैलाश वासदेव, अधिवक्ता, 3. किट्टी कुमारमंगलम**

---

[1] (2011) 6 एस. सी. सी. 86.

(श्रीमती), अधिवक्ता[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि मुकदमेबाजों और जनता दोनों को और न्यायालयों को दी जाने वाली सेवा की क्वालिटी में सुधार करना और समाज में अपनी छवि को चमकाना वृत्ति करने वाले सदस्यों पर निर्भर करता है । वृत्ति करने में बरती जाने वाले प्रत्यक्ष लापरवाह दृष्टिकोण को न्यायालय ने कभी महत्व नहीं दिया था ।

31. जहां तक राज्य के काउन्सेल का संबंध है, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसका उत्तरदायित्व अधिक होता है । ऐसे काउन्सेल से, जो राज्य का प्रतिनिधित्व करता है, तथ्यों का सही और निष्कपट रीति में कथन करने की अपेक्षा की जाती है । उसे अपने कर्तव्य का निर्वहन अत्यंत उत्तरदायित्वपूर्ण करना होता है और उसकी प्रत्येक कार्यवाही तर्कसंगत होनी चाहिए । उससे यह प्रत्याशा की जाती है कि उसका आचरण उच्चतर स्तर का होना चाहिए । उसका न्यायालय के प्रति उसे सहायता प्रदान करने के संबंध में विशेष कर्तव्य होता है । ऐसा इस कारण है कि लोक अभिलेखों तक उसकी पहुंच होती है और वह लोक हित के संरक्षण के लिए भी बाध्य होता है । इसके अलावा, उसका न्यायालय के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व होता है । जब इन मूल्यों का ह्रास होता है तो हम यह कह सकते हैं कि मामला गड़बड़ है । उसे सदैव यह याद रखना चाहिए कि एक अधिवक्ता को महत्वाकांक्षा और उपलब्धि के प्रति संवेदनशील न होते हुए अपनी हड्डियों में विधिक वृत्ति की नैतिकता और कुलीनता का एहसास होना चाहिए । हमें आशा है कि उनकी अपने कर्तव्य के प्रति, जो कि एक निस्सार और प्रतिष्ठित कर्तव्य है, प्रासंगिक प्रतिक्रिया होगी ।

32. परिणामस्वरूप, अपीलें मंजूर की जाती हैं और खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

ग्रो.

---

[1] (1995) 3 एस. सी. सी. 619.

पुंडप्पा यंकप्पा पुजारी

बनाम

कर्नाटक राज्य

2 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति रंजन प्रकाश देसाई

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – मृतक और अपीलार्थी के बीच खेत की सीमा को लेकर विवाद – अपील न्यायालय द्वारा साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन – अपील न्यायालय साक्ष्य का उस स्थिति में पुनर्मूल्यांकन कर सकता है जब उसका यह समाधान हो जाए कि विचारण न्यायालय ने त्रुटि की है और वह प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों की विश्वसनीयता पर विचार करने में असफल रहा है तथा ऐसे कतिपय विरोधाभासों और लोपों के आधार पर किसी साक्ष्य को खारिज करना उचित नहीं होगा जिनका संबंध मामले के मूल आधार से न हो, अतः ऐसे विरोधाभासों और लोपों के आधार पर की गई दोषमुक्ति न्यायोचित नहीं होगी ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – संपूर्ण साक्ष्य का विश्वासप्रद न होना – विभाज्यता का सिद्धांत – ऐसी परिस्थितियों में जहां साक्षी का संपूर्ण साक्ष्य विश्वासप्रद नहीं पाया जाता है वहां विभाज्यता का सिद्धांत लागू हो सकता है और साक्ष्य का वह भाग जो विश्वसनीय है, स्वीकार किया जा सकता है और अन्य भाग त्यक्त किया जा सकता है और इस आधार पर की गई दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

इस मामले में अभियुक्त पुंडप्पा यंकप्पा पुजारी का विचारण दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए सेशन न्यायालय द्वारा किया गया जिसमें उसे दोषमुक्त कर दिया गया । विचारण न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर राज्य द्वारा कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय द्वारा राज्य की अपील मंजूर करते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय को अनुचित ठहराया और अभियुक्त पुंडप्पा को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त

ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को मान्य ठहराते हुए उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं किया । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह सुस्थापित है कि यदि एक ही जैसे साक्ष्य के आधार पर दो मत युक्तियुक्त रूप से संभव हों, तब अपील न्यायालय उस साक्ष्य का मूल्यांकन करके स्वयं अपना मत अधिरोपित नहीं कर सकता । अपील न्यायालय साक्ष्य का उस स्थिति में पुनर्मूल्यांकन कर सकता है जब उसका यह समाधान हो जाए कि विचारण न्यायालय ने त्रुटि की है और वह प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा दिए गए साक्ष्य की विश्वसनीयता और सत्यनिष्ठा पर विचार करने में असफल रहा है । अभिलेख पर पस्तुत साक्ष्य का परिशीलन पूर्ण रूप से किया जाना चाहिए और ऐसे कतिपय विरोधाभासों और लोपों के आधार पर एक या अन्य किसी साक्ष्य को खारिज करना उचित नहीं होगा जिनका संबंध मामले के मूल आधार से नहीं होता है । यदि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य विश्वासप्रद पाए जाते हैं और वे अपरिवर्तनीय रहते हैं, तब ऐसे परिसाक्ष्य को अनदेखा करना अनुचित कहा जा सकता है । (पैरा 9)

ऐसी परिस्थितियों में जहां साक्षी का संपूर्ण साक्ष्य विश्वासप्रद नहीं पाया जाता है, वहां विभाज्यता का सिद्धांत लागू हो सकता है और साक्ष्य का वह भाग जो विश्वसनीय है, स्वीकार किया जा सकता है और अन्य भाग त्यक्त किया जा सकता है । यह सत्य है कि घटना के समय का उल्लेख करने में कतिपय विरोधाभास हैं । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) ने यह कथन किया है कि घटना लगभग 11.00 बजे पूर्वाह्न में घटित हुई थी जबकि संगप्पा (अभि. सा. 8) और चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) ने यह कथन किया है कि हमले की घटना 9.00 या 9.30 बजे पूर्वाह्न में घटित हुई थी । ऐसे विरोधाभासों के आधार पर, जहां फर्क केवल एक घंटे का हो, साक्षियों के कथनों को अविश्वसनीय नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि आम तौर पर ग्रामवासी अनुमान से ही समय बताते हैं । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) के परिसाक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि घटना के दिन वह गिरियव्वा (अभि. सा. 1) के खेत के निकट अपनी भेड़ें चरा रही थी । उसके साक्ष्य के अनुसार, पुंडप्पा यंकप्पा पुजारी (अभियुक्त सं. 1) अपने खेत पर था और अभियुक्त सं. 2 दुर्गम्मा मंदिर के निकट अपनी भेड़ें चरा रही थी । इसके पश्चात्, मृतक महंतप्पा उसके खेत पर आया जो अभियुक्तों के खेत के बराबर में है । मृतक ने देखा कि मेड़ के पत्थर हटे हुए हैं, जब

मृतक उसी जगह पत्थर को वापस लगाने गया, तब इसी बात को लेकर उनके बीच कहा-सुनी हो गई । लक्षमव्वा के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि जब महंतप्पा पत्थर को वापस लगा रहा था, अभियुक्त सं. 1 ने उसकी गर्दन और सिर पर तीन या चार बार कुल्हाड़ी से हमला किया । इसके परिणामस्वरूप, उसे अस्थिभंग के साथ कई क्षतियां कारित हुईं और उसकी मृत्यु हो गई । यह घटना देखकर, लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) चिल्लाई । इसके पश्चात् संगप्पा (अभि. सा. 8) और चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) जो वहां से लगभग 10 फुट की दूरी पर रंगप्पा के खेत में हल चला रहे थे, तुरंत घटनास्थल पर पहुंचे । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) के परिसाक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त सं. 1 ने ही मृतक महंतप्पा की गर्दन और सिर पर कुल्हाड़ी से वार किए थे । इसके अतिरिक्त, यद्यपि लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) की विस्तार से प्रतिपरीक्षा की गई है, फिर भी प्रतिरक्षा पक्ष ऐसा साक्ष्य प्रकट कराने में असफल रहा है जिससे हमला किए जाने की घटना के संबंध में उसके परिसाक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराया जा सके । मृतक महंतप्पा की माता गिरियव्वा (अभि. सा. 1) के परिसाक्ष्य से यह दर्शित होता है कि वह अभियुक्तों को जानती है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में जब वह घर पर थी, लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) वहां आई और उसने गिरियव्वा को बताया कि उसके पुत्र महंतप्पा पर पुंडप्पा (अभियुक्त सं. 1) और सिद्दप्पा (अभियुक्त सं. 2) द्वारा क्रमशः कुल्हाड़ी और डंडे से हमला किया गया है । इसके अतिरिक्त, गिरियव्वा ने यह कथन किया है कि इसके पश्चात् वह खेत पर गई और उसने महंतप्पा को जमीन पर पड़ा हुआ देखा जिसके सिर और गर्दन के पीछे क्षति आई हुई थी । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि उस समय तक भीमप्पा (अभि. सा. 10), रंगनगौडा (अभि. सा. 11) भी उनके खेत पर आ गए । भीमप्पा (अभि. सा. 10) ने अपने पुत्र महंतप्पा को ग्राम में भेज दिया और वहां से उसे बागलकोट अस्पताल लाया गया जहां पर उसे भर्ती कराया गया । इस साक्षी ने प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि उस दिन 6.00 बजे पूर्वाह्न में उसका पति बागलकोट के लिए रवाना हुआ था । लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) उसके घर आई और उसे घटना के बारे में बताया और उस समय वह घर पर अकेली थी । शिकायतकर्ता गिरियव्वा (अभि. सा. 1) के परिसाक्ष्य से यह स्पष्ट है कि जब वह घर पर मौजूद थी, लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में वहां आई और उसने गिरियव्वा को अभियुक्त सं. 1 पुंडप्पा द्वारा महंतप्पा पर किए गए

हमले की घटना के बारे में बताया । शिकायतकर्ता के अभिसाक्ष्य का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि महंतप्पा भोजन करने के पश्चात् फसल की देख-रेख करने के लिए प्रातःकाल जल्दी घर से रवाना हुआ था । इस तथ्य की संपुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से होती है कि मृतक ने प्रातःकाल में जल्दी ही भोजन कर लिया था । शवपरीक्षण रिपोर्ट में डा. हनमंत (अभि. सा. 16) ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि मृतक का आमाशय ज्यों का त्यों है जिसमें भोजन की पर्याप्त मात्रा है और उसमें भी चावल की मात्रा अधिक है । अतः, जहां तक मृतक महंतप्पा के प्रातःकाल में घर से जल्दी ही निकलने का संबंध है, गिरियव्वा (अभि. सा. 1) के परिसाक्ष्य से डा. हनमंत (अभि. सा. 16) के चिकित्सीय साक्ष्य की पूर्ण रूप से संपुष्टि होती है । इस प्रकार करोटि पर पाए गए छिन्न घावों की प्रकृति से यह स्पष्ट हो जाता है कि महंतप्पा की मृत्यु सिर पर वार किए जाने के कारण मस्तिष्क में क्षति कारित होने से हुई है जो संभवतया भारी धारदार हथियार, जिसे प्रदर्श पी-17 के रूप में चिह्नांकित किया गया है, से कई बार चोट मारने के परिणामस्वरूप पहुंची है । इसमें कोई विवाद नहीं है कि मृतक की मृत्यु का कारण मानव वध है । सामान्यतः, खेत जोतने का कार्य प्रातःकाल में और सूर्यास्त होने तक किया जाता है । यह एक आम तरीका है । अतः, संगप्पा (अभि. सा. 8) और चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) का मौजूद होकर इस घटना को देखना लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) के परिसाक्ष्य से साबित होता है । मात्र इस कारण से कि साक्षियों के कथनों में एक घंटा या आधा घंटा जैसे कुछ फर्क हैं, मामले पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य, विशेषकर लक्षमव्वा (अभि. सा. 7), संगप्पा (अभि. सा. 8) और चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) जैसे प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य संगत, विश्वासप्रद और एक दूसरे के साथ पूर्णतया संपुष्ट हैं और उनकी विश्वसनीयता पर संदेह किए जाने की कोई गुंजाइश नहीं है । इन साक्षियों के साक्ष्य की संपुष्टि पूर्ण रूप से भीमप्पा (अभि. सा. 10), रंगनगौड़ा (अभि. सा. 11) के परिसाक्ष्य से भी होती है जो लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) से घटना के बारे में जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् घटनास्थल पर गए थे । उपर्युक्त सभी तथ्य अभियुक्त सं. 1 के दोषी होने की ओर सीधे संकेत करते हैं । हमने यह विचार किया है कि अभियुक्तों और मृतक के परिवार के बीच मेड़ को लेकर विवाद चल रहा था । सोमप्पा (अभि. सा. 2) ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि घटना से 10 से 15 दिन पूर्व चंद्रप्पा (मृतक का पिता) और अभियुक्त अपने खेतों की मेड़ के विवाद के संबंध में उनके पास आए थे । स्वयं इस साक्षी ने

और सोनप्पा (अभि. सा. 3), आरोप साक्षी 23 और आरोप साक्षी 24 ने दोनों पक्षकारों को सलाह दी और उनके खेतों की मेड़ की सीमा नियत की । इसके पश्चात्, पुंडप्पा (अभियुक्त सं. 1) ने एक प्राइवेट सर्वेक्षक द्वारा अपनी भूमि की माप कराई । प्राइवेट सर्वेक्षक ने बुजुर्गों द्वारा नियत की गई मेड़ की सीमा की पुष्टि कर दी । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) के साक्ष्य में यह उल्लेख है कि जब वह गिरियव्वा (अभि. सा. 1) के खेत के निकट भेड़ें चरा रही थी, तब मृतक महंतप्पा और अभियुक्त सं. 1 के बीच मेड़ के पत्थरों को लगाने के संबंध में कहा-सुनी हो गई थी । इस साक्षी के साक्ष्य से यह भी पता चलता है कि यह अभियुक्त सं. 1 द्वारा मेड़ से पत्थर हटाया गया था और मृतक महंतप्पा ने हटाए हुए पत्थर को उसकी जगह पर लगाने का प्रयास किया था । इस पर अभियुक्त सं. 1 ने मृतक महंतप्पा के सिर और गर्दन के पीछे कुल्हाड़ी से वार किए जिसके परिणामस्वरूप मृतक के शरीर में अस्थिभंग हो गया और फलस्वरूप अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गई । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने और साक्षियों के परिसाक्ष्य से साबित किए गए अभियुक्तों के कृत्यों का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर, हमारा यह मत है कि अभियुक्तों का उक्त कार्य, जिसके परिणामस्वरूप महंतप्पा की मृत्यु हुई है, न तो दंड संहिता की धारा 300 के अधीन अपवाद की परिधि में आता है और न ही दंड संहिता की धारा 304 की परिधि में । यह गंभीर और अचानक प्रकोपन या सद्भाव के अंतर्गत किया गया कार्य नहीं है और न ही यह ऐसा कार्य है जिसे अभियुक्तों ने यह विश्वास किया हो कि यह कार्य सद्भावपूर्ण, विधिपूर्ण और आवश्यक है जिसे अपने कर्तव्य का निर्वहन करने के लिए किया गया हो और न ही यह ऐसा कार्य है जो अचानक लड़ाई में पूर्व-चिन्तन के बिना कारित किया गया हो । अतः, अपील न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त सं. 1 का कृत्य दंड संहिता की धारा 300 के संघटकों के अधीन आता है जो दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय है । (पैरा 19, 20, 21, 22, 24, 25 और 26)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2006]	(2006) 1 एस. सी. सी. 401 : **टी. सुब्रह्मण्यन** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	11
[2005]	(2005) 13 एस. सी. सी. 353 : **हाजी खां** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	12

[2003] (2003) 12 एस. सी. सी. 241 :
हेमराज और एक अन्य बनाम **पंजाब राज्य** । 10

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2006 की दांडिक अपील सं. 1251.

2000 की दांडिक अपील सं. 9 में कर्नाटक उच्च न्यायालय, बंगलुरू के तारीख 16 जून, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री कृतिन आर. जोशी, गुणशेखर और राजेश महाले

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री वी. एन. रघुपति, लगनेश मिश्रा, परीक्षित अंगदी और संजय आर. हेगड़े

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – यह अपील 2000 की दांडिक अपील सं. 9 में कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 16 जून, 2006 के निर्णय के विरुद्ध की गई है । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा कर्नाटक राज्य की ओर से फाइल की गई अपील भागतः मंजूर की है, भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में ''दंड संहिता'' कहा गया है) की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए की गई अपीलार्थी की दोषमुक्ति के निर्णय को अपास्त करते हुए, दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थी को दोषी अभिनिर्धारित किया है और उसे आजीवन कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया है ।

2. अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि शिकायतकर्ता गिरियव्वा, उसके पुत्र शिवलिंगप्पा, आदीवेप्पा, मृतक महंतप्पा और पुंडप्पा यंकप्पा पुजारी (इस मामले में का अपीलार्थी अर्थात् अभियुक्त सं. 1) और सिद्दप्पा पुंडप्पा पुजारी (अभियुक्त सं. 2) बागलकोट तालुक के ग्राम यंकंची के निवासी हैं । मृतक के परिवार का खेत तथा अभियुक्त का खेत एक दूसरे के बराबर-बराबर स्थित हैं । मृतक का खेत उत्तर दिशा में और अभियुक्त की दक्षिण दिशा में है । दोनों खेतों के बीच में पत्थर की मेड़ बनी हुई है । अभियुक्त और मृतक के पिता चंद्रप्पा तेलगी के बीच पत्थर की इस मेड़ को लेकर विवाद चल रहा था । तारीख 5 जुलाई, 1997 को लगभग 9.00 बजे पूर्वाह्न में अभियुक्त सं. 1 अपने खेत पर मौजूद था और मेड़ के पत्थर

हटा रहा था । मृतक महंतप्पा ने पूछा कि वह मेड़ की पत्थर क्यों हटा रहा है और इस पर अभियुक्त सं. 1 और मृतक महंतप्पा के बीच कहा-सुनी हुई । जब मृतक मेड़ का पत्थर वापस लगा रहा था, अभियुक्त सं. 1 ने उसकी गर्दन पर कुल्हाड़ी से हमला किया जिससे गंभीर अस्थिभंग हो गया और क्षतियां भी कारित हुईं जिनके परिणामस्वरूप अत्यधिक रक्तस्राव हुआ और अभियुक्त सं. 2 ने मृतक पर डंडे से हमला किया । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) जो अपनी भेड़ें चरा रही थी, हमले की घटना देखकर चिल्लाई । इसके तुरंत पश्चात् संगप्पा (अभि. सा. 8) और चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) घटनास्थल पर की ओर दौड़े और उन्होंने हमले की घटना देखी । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) तुरंत ग्राम की ओर चल दी । वह रास्ते में भीमप्पा (अभि. सा. 10) और रंगनगौड़ा (अभि. सा. 11) से मिली और उसने उन्हें घटना के बारे में बताया जो यह सुनकर घटनास्थल पर गए । इसके अतिरिक्त, लक्षमव्वा ने इस घटना के बारे में शिकायतकर्ता गिरियव्वा (अभि. सा. 1) अर्थात् मृतक की माता को बताया । गिरियव्वा (अभि. सा. 1) तुरंत घटनास्थल पर गई और उसने क्षतियां देखीं । मृतक महंतप्पा को भीमप्पा (अभि. सा. 10) और रंगनगौड़ा (अभि. सा. 11) द्वारा ग्राम भेज दिया गया । आहत को वहां से गोवर्धन अस्पताल, बागलकोट भेज दिया गया ।

3. तारीख 5 जुलाई, 1997 को डा. हनमंत (अभि. सा. 16) द्वारा आहत का उपचार किया गया और तुरंत ही इसकी सूचना (प्रदर्श पी-12) पुलिस उपनिरीक्षक, ग्रामीण पुलिस थाना बागलकोट को दी गई । प्रदर्श पी-12 के प्राप्त होने पर, पुलिस उपनिरीक्षक सेखरप्पा (अभि. सा. 14) अस्पताल गया और आहत के स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ की । चिकित्सक ने प्रदर्श पी-9 के अनुसार अनुमोदन-पत्र जारी किया जिसमें उल्लेख किया कि आहत कथन देने के लिए स्वस्थ नहीं है । इसके पश्चात्, पुलिस उपनिरीक्षक (अभि. सा. 14) ने आहत की माता गिरियव्वा से एक लिखित शिकायत (प्रदर्श पी-1) प्राप्त की । दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 326, 324 और 307 के अधीन अपराध के लिए अपराध मामला सं. 95/1997 रजिस्ट्रीकृत किया गया और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी-13) तैयार की गई और इसे मजिस्ट्रेट को भेज दिया गया । इसी दौरान पुलिस सहायक उप-निरीक्षक गौसासाब (अभि. सा. 13) को आहत की मृत्यु-संसूचना-रिपोर्ट (प्रदर्श पी-10) प्राप्त हुई । तदनुसार, न्यायालय को एक अध्यपेक्षा (प्रदर्श पी-11) भेजी गई जिसमें दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध जोड़े जाने की ईप्सा की गई । उसी दिन, पुलिस उपनिरीक्षक घटनास्थल पर गया, पंचनामा (प्रदर्श पी-2) तैयार किया गया,

रक्तरंजित और सादा मिट्टी, तात्विक वस्तु-1 और तात्विक वस्तु-2 अभिगृहीत की गईं और इस मामले का अन्वेषण सर्किल निरीक्षक अर्थात् पांडुरंग (अभि. सा. 17) को सौंप दिया गया । पुलिस सर्किल निरीक्षक ने इस मामले में आगे अन्वेषण किया । उसने साक्षियों के कथन अभिलिखित किए और पुंडप्पा (अभियुक्त सं. 1) को गिरफ्तार किया, रक्तरंजित कमीज महाजर के अधीन अभिगृहीत की और उसका स्वेच्छा से दिया गया कथन (प्रदर्श पी-18) अभिलिखित किया । उसने पुंडप्पा (अभियुक्त सं. 1) को चिकित्सा परीक्षा के लिए अस्पताल भेजा और उसे अभिरक्षा में रखा । तारीख 6 जुलाई, 1997 को वह जनरल अस्पताल, बागलकोट गया, महंतप्पा के शव के संबंध में मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श पी-24) तैयार की और साक्षियों के कथन अभिलिखित किए । उसने रक्तरंजित तौलिया और चादर अर्थात् तात्विक वस्तु-4 और तात्विक वस्तु-5 को पंचनामा (प्रदर्श पी-15) के अनुसार अभिगृहीत किया । अभियुक्त सं. 1 के कहने पर, उसने कुल्हाड़ी (तात्विक वस्तु-10) और डंडा (तात्विक वस्तु-11) बरामद किए और पंचनामा प्रदर्श पी-7 तैयार किया । शव का शवपरीक्षण कराया गया । उसी दिन अभियुक्त सं. 2 को गिरफ्तार किया गया और सहायक पुलिस उपनिरीक्षक द्वारा प्रस्तुत किया गया । दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए आरोप पत्र फाइल किया गया ।

4. विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने अभियुक्तों को न्यायालय में बुलाया, दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आरोप विरचित किए । दोनों अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने की मांग की ।

5. अभियोजन पक्ष ने कुल मिलाकर 17 साक्षियों की परीक्षा की है, 24 प्रदर्शों को चिह्नांकित किया है और 11 तात्विक वस्तुएं प्रस्तुत की हैं । प्रतिरक्षा पक्ष ने प्रदर्श डी-1 से प्रदर्श डी-6 के रूप में दस्तावेज चिह्नांकित किए हैं । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभियुक्त का कथन अभिलिखित किया गया और उन्होंने अपनी प्रतिरक्षा में अभियोजन के पक्षकथन से पूर्णतया इनकार किया है । अभियुक्तों ने अपनी प्रतिरक्षा में कोई भी साक्षी प्रस्तुत नहीं किया है ।

6. विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने तारीख 15 दिसंबर, 1998 के अपने निर्णय में अभिलिखित कारणों के आधार पर दोनों अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध से

दोषमुक्त कर दिया । दोषमुक्ति के उक्त निर्णय को राज्य द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है जिसमें उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय पारित किया है और अपीलार्थी (अभियुक्त सं. 1) के संबंध में किए गए दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त करते हुए उसे दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया है तथा आजीवन कारावस से दंडादिष्ट किया है ।

7. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत युक्तियुक्त है, इसलिए एक ही जैसे साक्ष्य के आधार पर भिन्न मत व्यक्त करते हुए अपील न्यायालय के समक्ष दोषमुक्ति के आदेश को उलटने के लिए कोई कारण नहीं है । इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी की ओर से यह दलील दी गई है कि विचारण न्यायालय ने त्रुटि की है और वह प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा दिए गए कथनों की विश्वसनीयता और सत्यनिष्ठा का निर्धारण करने में असफल रहा है ।

8. पक्षकारों की ओर से दी गई दलीलों को दृष्टिगत करते हुए, विचार के लिए यह प्रश्न सामने आता है कि क्या उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को उलट कर दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करके न्यायोचित किया है या नहीं ।

9. यह सुस्थापित है कि यदि एक ही जैसे साक्ष्य के आधार पर दो मत युक्तियुक्त रूप से संभव हों, तब अपील न्यायालय उस साक्ष्य का मूल्यांकन करके स्वयं अपना मत अधिरोपित नहीं कर सकता । अपील न्यायालय साक्ष्य का उस स्थिति में पुनर्मूल्यांकन कर सकता है जब उसका यह समाधान हो जाए कि विचारण न्यायालय ने त्रुटि की है और वह प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा दिए गए साक्ष्य की विश्वसनीयता और सत्यनिष्ठा पर विचार करने में असफल रहा है । अभिलेख पर पस्तुत साक्ष्य का परिशीलन पूर्ण रूप से किया जाना चाहिए और ऐसे कतिपय विरोधाभासों और लोपों के आधार पर एक या अन्य किसी साक्ष्य को खारिज करना उचित नहीं होगा जिनका संबंध मामले के मूल आधार से नहीं होता है । यदि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य विश्वासप्रद पाए जाते हैं और वे अपरिवर्तनीय रहते हैं, तब ऐसे परिसाक्ष्य को अनदेखा करना अनुचित कहा जा सकता है ।

10. **हेमराज और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस

---

[1] (2003) 12 एस. सी. सी. 241.

न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "16. अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर हमारा यह निष्कर्ष है कि विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का एक संभव युक्तियुक्त दृष्टिकोण है । अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया साक्ष्य असंगत है और इससे अभियोजन पक्षकथन की सत्यता पर घोर संदेह होता है । यदि भिन्न मत व्यक्त किया जाना संभव हो, तब भी हम यह नहीं कह सकते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर एक युक्तियुक्त मत नहीं है । यह सुस्थापित है कि एक ही जैसे साक्ष्य के आधार पर यदि युक्तियुक्त रूप से दो मत संभव हों और विचारण न्यायालय अभियुक्त के पक्ष में मत व्यक्त करता है, तब अपील न्यायालय दोषमुक्ति के विरुद्ध की गई अपील के मामले में दोषमुक्ति के आदेश को उलटने में तब तक न्यायोचित नहीं होगा जब तक कि वह इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच जाए कि विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत पूर्णतया अयुक्तियुक्त या अनुचित था और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त के पक्ष में मत व्यक्त करना संभव ही नहीं था ।"

11. **टी. सुब्रह्मण्यन** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है :–

> "17. ..... जहां एक ही जैसे साक्ष्य के आधार पर युक्तियुक्त रूप से दो मत संभव हों, वहां यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष ने युक्तियुक्त संदेह के परे अपना पक्षकथन साबित कर दिया है .....।"

12. ऐसी परिस्थितियों में जहां साक्षी का संपूर्ण साक्ष्य विश्वासप्रद नहीं पाया जाता है, वहां विभाज्यता का सिद्धांत लागू हो सकता है और साक्ष्य का वह भाग जो विश्वसनीय है, स्वीकार किया जा सकता है और अन्य भाग त्यक्त किया जा सकता है । **हाजी खां** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "साक्ष्य का वह भाग जो विश्वासोत्पादक है, स्वीकार किया जा सकता है और अविश्वसनीय भाग त्यक्त किया जा सकता है ।"

---

[1] (2006) 1 एस. सी. सी. 401.

[2] (2005) 13 एस. सी. सी. 353.

यह भी मत व्यक्त किया गया है कि :–

'9. सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि अभियोजन पक्ष षड्यंत्र की कहानी को सिद्ध करने में असफल रहा है और अपराध कारित करने के हेतु को भी साबित नहीं किया गया है, किंतु इसका क्या यह अर्थ होगा कि उच्च न्यायालय प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथनों का अवलंब लेकर अभियुक्त को मात्र इस कारण दोषसिद्ध नहीं कर सकता था कि अभियोजन पक्ष एक विशिष्ट कहानी को साबित करने में असफल रहा है । हमारा ऐसा विचार नहीं है । यह आवश्यक नहीं है कि यदि षड्यंत्र या हेतु से संबंधित अभियोजन पक्ष की कहानी साबित नहीं हो पाती है, तब संपूर्ण पक्षकथन निरर्थक हो जाएगा । उच्च न्यायालय ने साक्षियों द्वारा दिए गए साक्ष्य को विश्वासप्रद पाया है और न्यायालय ने यह भी देखा है कि चिकित्सीय साक्ष्य और तत्काल प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने और इसके अतिरिक्त अपराध में प्रयोग किए गए हथियार के साथ अपीलार्थी के घटनास्थल पर या उसके आस-पास से ही गिरफ्तार किए जाने से इन साक्षियों के कथनों की पुष्टि हो जाती है । जब न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का साक्ष्य सत्य है और इसका अवलंब लिया जा सकता है तब हेतु के साबित किए जाने या अपराध कारित किए जाने के षड्यंत्र के सबूत के अभाव से अभियोजन पक्षकथन को, विश्वसनीय साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए, निष्फल नहीं माना जाएगा ।'

13. लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) ने अपनी मुख्य परीक्षा में यह कथन किया है कि वह 10.00 बजे पूर्वाह्न में भेड़ों की देख-रेख के लिए गिरियव्वा (अभि. सा. 1) के खेत पर गई थी । उस समय मृतक महंतप्पा खेत पर पहुंच चुका था । अभियुक्त खेत पर मौजूद थे । पुंडप्पा (अभियुक्त सं. 1) ने मेड़ के पत्थर हटा दिए थे । पुंडप्पा ने अभियुक्त सं. 1 से पूछा कि उसने मेड़ के पत्थर क्यों हटाए हैं । अभियुक्त सं. 1 ने महंतप्पा से कहा कि मेड़ के पत्थर वहीं पड़े रहेंगे । महंतप्पा ने इस बात पर बल दिया कि पुंडप्पा उन पत्थरों को वापस वहीं रख दे जहां से हटाए हैं । पुंडप्पा (अभियुक्त सं. 1) ने महंतप्पा को मेड़ के पत्थरों को उनके मूल स्थान पर रखने के लिए चुनौती दी । जब महंतप्पा मेड़ का पत्थर वापस लगा रहा था तब पुंडप्पा (अभियुक्त सं. 1) ने महंतप्पा की गर्दन पर कुल्हाड़ी से हमला

किया । उस समय सिद्दप्पा (अभियुक्त सं. 2) ने महंतप्पा के सिर पर डंडे से हमला किया । पुंडप्पा (अभियुक्त सं. 1) ने महंतप्पा की गर्दन और सिर पर छह से सात बार हमला किया । इस घटना को देखकर लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) चिल्लाई, उसके चीखने की आवाज सुनकर आरोप साक्षी 13, 14 और 15 (आरोप साक्षी 14 और आरोप साक्षी 15 क्रमशः अभि. सा. 8 और अभि. सा. 9 हैं) वहां आ गए । जब वह घर वापस आ रही थी, वह रास्ते में आरोप साक्षी 17 और आरोप साक्षी 19 (अभि. सा. 10 और अभि. सा. 11) से मिली और उसने उन्हें घटना के बारे में बताया । वह आगे गई और उसने महंतप्पा की माता गिरियव्वा (अभि. सा. 1) को घटना के बारे में सूचित किया । गिरियव्वा (अभि. सा. 1) अपने पुत्र महंतप्पा को देखने गई जो यंकंची ग्राम में लाया गया था और वहां से बागलकोट ले जाया गया । 3.00 बजे अपराह्न में बागलकोट के अस्पताल में महंतप्पा की मृत्यु हो गई । पुलिस द्वारा लक्षमव्वा का कथन अभिलिखित किया गया ।

लक्षमव्वा ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह दोहराया है कि उसने अभिकथित घटना देखी है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि अभियुक्त सं. 1 उसके खेत में बैठा हुआ था । महंतप्पा वहां आया और उसने खेत में चक्कर लगाए । महंतप्पा अपने खेत से होता हुआ मेड़ के पास आया । लक्षमव्वा सड़क के बीच में खड़ी हुई थी । उसने वहां से कहा-सुनी की आवाज सुनी और घटना होते हुए देखी । वह महंतप्पा के निकट गई और उसे देखा । उस समय दोनों अभियुक्त वहां मौजूद थे । प्रतिपरीक्षा के दौरान एक प्रक्रम पर उसने यह कथन किया है कि उसने यह नहीं देखा था कि मेड़ के पत्थर किसने हटाए किंतु उसने यह दोहराया है कि जब महंतप्पा मेड़ का पत्थर वापस लगाना चाहता था, तब पुंडप्पा (अभियुक्त सं. 1) ने ऐसा किए जाने पर आपत्ति की और झगड़ा हो गया । जब महंतप्पा पत्थर वापस लगा रहा था, अभियुक्त सं. 1 और 2 ने महंतप्पा पर हमला किया । महंतप्पा मेड़ के पत्थरों के निकट जमीन पर गिर गया । महंतप्पा की क्षतियों से रक्त निकलने लगा और रक्त मेड़ के पत्थरों के निकट जमीन पर गिर गया । जब इस साक्षी ने महंतप्पा से मालूम किया, तो महंतप्पा नीचे गिर गया, वह चिल्लाई और उसके घटनास्थल से चले जाने के बाद भी अभियुक्त घटनास्थल पर ही रहे । इस प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य की विश्वसनीयता और सत्यता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है ।

14. संगप्पा (अभि. सा. 8) ने अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया है

कि वह पुंडप्पा (आरोप साक्षी 13) और चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) के साथ खेत जोतने के लिए रंगप्पा संनप्पा गौली (आरोप साक्षी 24) के खेत पर गया । लगभग 9.00 बजे पूर्वाह्न में उन्होंने चीख-पुकार सुनी । उन्होंने महंतप्पा की गर्दन और सिर पर कुल्हाड़ी से दो से तीन बार हमला होते हुए देखा । उन्होंने एक अन्य व्यक्ति को भी देखा जिसने महंतप्पा के सिर पर डंडे से हमला किया था । जब वे वहां गए, उन्हें अभियुक्तों द्वारा धमकी दी गई । संगप्पा ने यह कथन किया है कि लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) उस समय वहां मौजूद थी । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) ग्राम को चली गई और वह रास्ते में भीमप्पा (अभि. सा. 10) और रंगनगौड़ा (अभि. सा. 11) से मिली और उसने उन्हें घटना के बारे में बताया । उन्होंने महंतप्पा को पानी पिलाया और उसके पश्चात् उसे यंकंची ग्राम ले जाया गया और उसे चिकित्सा उपचार के लिए वहां से बागलकोट ले जाया गया ।

इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि वह ग्राम से 7.00 बजे पूर्वाह्न में चला था । वह घटनास्थल पर चीख-पुकार की आवाज सुनकर पहुंचा था और उसने घटनास्थल पर महंतप्पा को हमले के कारण नीचे गिरते हुए देखा था । इसके पश्चात्, अभियुक्त वहां पर पांच मिनट तक खड़े रहे । जब उन्होंने अभियुक्तों से मालूम किया कि उन्होंने महंतप्पा पर हमला क्यों किया है, तब पुंडप्पा (अभियुक्त सं. 1) सिंदल ग्राम की ओर कुल्हाड़ी और डंडा लेकर चला गया । सिद्दप्पा (अभियुक्त सं. 2) भेड़ें चराने चला गया ।

15. चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) ने अपने कथन में यह उल्लेख किया है कि वह संगप्पा (अभि. सा. 8) और पुंडप्पा (आरोप साक्षी 13) के साथ उस दिन 9.00 बजे पूर्वाह्न में रंगप्पा (आरोप साक्षी 24) का खेत जोतने गया था । अभियुक्त सं. 1 और अभियुक्त सं. 2 ने महंतप्पा पर हमला किया और वह नीचे गिर गया । अभियुक्त सं. 1 ने महंतप्पा पर कुल्हाड़ी से हमला किया और अभियुक्त सं. 2 ने उस पर डंडे से हमला किया । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) उस समय वहां मौजूद थी । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) ग्राम को चली गई और उसने घटना के बारे में सूचित किया । गिरियव्वा (अभि. सा. 1) और ग्रामवासी वहां आ गए । आहत महंतप्पा को 2.00 बजे अपराह्न में बागलकोट के अस्पताल ले जाया गया और अंत में अस्पताल में क्षतियों के कारण महंतप्पा की मृत्यु हो गई ।

चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) ने इस सुझाव पर विवाद किया है कि चंद्रशेखर की भूमि पहले उसके पूर्वजों की थी । उसने इस सुझाव से भी

इनकार किया है कि उसके पूर्वजों और अभियुक्त व्यक्तियों के बीच अभियुक्तों की भूमि के संबंध में कोई विवाद चल रहा था । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह दोहराया है कि जब उन्होंने कहा-सुनी की आवाजें सुनी थीं, उस समय उनके और अभियुक्त व्यक्तियों के बीच लगभग 10 फुट की दूरी थी । वे जिस समय वहां पहुंचे थे, उन्होंने महंतप्पा को जमीन पर पड़ा हुआ देखा था । खेत पर पहुंचने के पश्चात्, उन्होंने अभियुक्त सं. 1 को महंतप्पा पर कुल्हाड़ी से हमला करते हुए देखा था । इस साक्षी ने इस सुझाव से इनकार किया है कि घटनास्थल उस जगह से दिखाई नहीं दे सकता था जहां पर वे खेत जोत रहे थे ।

16. मृतका की माता गिरियव्वा (अभि. सा. 1) शिकायतकर्ता है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि घटना वाले दिन उसका पुत्र महंतप्पा लगभग 7.00 बजे पूर्वाह्न में फसल की देख-रेख के लिए खेत पर गया था । अभियुक्तों का खेत उनके खेत के बराबर में है । लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में गिरियव्वा अपने घर पर मौजूद थी । उस समय लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) वहां आई और उसने गिरियव्वा को बताया कि उसके पुत्र महंतप्पा पर पुंडप्पा (अभियुक्त सं. 1) और सिद्दप्पा (अभियुक्त सं. 2) द्वारा हमला किया गया है । गिरियव्वा घटनास्थल पर गई । उसके पुत्र के सिर और गर्दन के पीछे क्षतियां आई हुई थीं । भीमप्पा (अभि. सा. 10) रंगनगौड़ा (अभि. सा. 11) उस समय उसके खेत पर आए । भीमप्पा (अभि. सा. 10) उसके पुत्र महंतप्पा को ग्राम यंकंची लेकर आया । यंकंची ग्राम से वे ग्राम मुगलोली आए और इसके पश्चात् आहत महंतप्पा को बागलकोट लाया गया और उसे सरकारी अस्पताल में भर्ती कराया गया । बागलकोट के अस्पताल में 3.00 बजे अपराह्न में महंतप्पा की मृत्यु हो गई ।

इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि उस दिन 6.00 बजे पूर्वाह्न में उसका पति बागलकोट के लिए रवाना हुआ था । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) वहां आई और उसने गिरियव्वा को उसके घर पर घटना के बारे में बताया और उस समय गिरियव्वा घर पर अकेली मौजूद थी । लगभग 9.00 बजे पूर्वाह्न में लक्षमव्वा ने गिरियव्वा को इस घटना के बारे में बताया था । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) उसके साथ खेत पर नहीं गई थी । गिरियव्वा अपने खेत पर अकेली गई थी । भीमप्पा (अभि. सा. 10) और रंगनगौड़ा (अभि. सा. 11) उसके खेत पर गिरियव्वा के पहुंचने तक अपने आप पहुंच गए थे, भीमप्पा (अभि. सा. 10) और रंगनगौड़ा (अभि. सा. 11) उसके खेत पर मौजूद थे । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है

कि भीमप्पा (अभि. सा. 10), रंगनगौड़ा (अभि. सा. 11) और उसके सिवाय खेत पर अन्य कोई भी मौजूद नहीं था । उस समय महंतप्पा बात करने की स्थिति में था ।

17. भीमप्पा (अभि. सा. 10) ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि वह गिरियव्वा (अभि. सा. 1), मृतक महंतप्पा, अभियुक्तों और रंगनगौड़ा (अभि. सा. 11) को जानता है । उसने यह भी कथन किया है कि लगभग 9.30 बजे पूर्वाह्न में महंतप्पा को क्षतिग्रस्त अवस्था में देखा गया था जिसकी गर्दन पर क्षतियां आई हुई थीं और इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि उसने महंतप्पा की क्षतियों को तौलिया से ढक दिया था और वह महंतप्पा को वहां से ले गया था । तौलिया और चादर तात्विक वस्तु-4 और 5 हैं ।

18. संगप्पा (अभि. सा. 8) और चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) के साक्ष्य पर विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दोनों साक्षियों ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उन्होंने उस समय चीख-पुकार की आवाज सुनी थी जब वे घटनास्थल के निकट गए थे, उन्होंने अभियुक्त सं. 1 और अभियुक्त सं. 2 को महंतप्पा पर कुल्हाड़ी और डंडे से हमला करते हुए देखा था । साक्षियों की विस्तार से प्रतिपरीक्षा किए जाने के बावजूद, संगप्पा (अभि. सा. 8) और चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) के परिसाक्ष्य को त्यक्त करने के लिए अधिक साक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ है । भीमप्पा (अभि. सा. 10) और रंगनगौड़ा (अभि. सा. 11) के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि वे रंगप्पा गौली के खेत पर लगभग 7.00 बजे या 7.30 बजे पूर्वाह्न में जुताई करने के लिए आए थे, इसके पश्चात् उन्होंने चीख-पुकार की आवाज सुनी और वे तुरंत घटनास्थल पर गए जहां पर उन्होंने लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) को मौजूद देखा जो शिकायतकर्ता गिरियव्वा (अभि. सा. 1) को घटना के बारे में सूचित करने के लिए ग्राम की ओर रवाना हो गई ।

19. यह सत्य है कि घटना के समय का उल्लेख करने में कतिपय विरोधाभास हैं । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) ने यह कथन किया है कि घटना लगभग 11.00 बजे पूर्वाह्न में घटित हुई थी जबकि संगप्पा (अभि. सा. 8) और चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) ने यह कथन किया है कि हमले की घटना 9.00 या 9.30 बजे पूर्वाह्न में घटित हुई थी । ऐसे विरोधाभासों के आधार पर, जहां फर्क केवल एक घंटे का हो, साक्षियों के कथनों को अविश्वसनीय नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि आम तौर पर ग्रामवासी अनुमान से ही समय बताते हैं ।

20. लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) के परिसाक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह दर्शित

होता है कि घटना के दिन वह गिरियव्वा (अभि. सा. 1) के खेत के निकट अपनी भेड़ें चरा रही थी । उसके साक्ष्य के अनुसार, पुंडप्पा यंकप्पा पुजारी (अभियुक्त सं. 1) अपने खेत पर था और अभियुक्त सं. 2 दुर्गम्मा मंदिर के निकट अपनी भेड़ें चरा था । इसके पश्चात्, मृतक महंतप्पा उसके खेत पर आया जो अभियुक्तों के खेत के बराबर में है । मृतक ने देखा कि मेड़ के पत्थर हटे हुए हैं, जब मृतक उसी जगह पत्थर को वापस लगाने गया, तब इसी बात को लेकर उनके बीच कहा-सुनी हो गई । लक्षमव्वा के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि जब महंतप्पा पत्थर को वापस लगा रहा था, अभियुक्त सं. 1 ने उसकी गर्दन और सिर पर तीन या चार बार कुल्हाड़ी से हमला किया । इसके परिणामस्वरूप, उसे अस्थिभंग के साथ कई क्षतियां कारित हुईं और उसकी मृत्यु हो गई । यह घटना देखकर, लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) चिल्लाई । इसके पश्चात् संगप्पा (अभि. सा. 8) और चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) जो वहां से लगभग 10 फुट की दूरी पर रंगप्पा के खेत में हल चला रहे थे, तुरंत घटनास्थल पर पहुंचे । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) के परिसाक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त सं. 1 ने ही मृतक महंतप्पा की गर्दन और सिर पर कुल्हाड़ी से वार किए थे । इसके अतिरिक्त, यद्यपि लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) की विस्तार से प्रतिपरीक्षा की गई है, फिर भी प्रतिरक्षा पक्ष ऐसा साक्ष्य प्रकट कराने में असफल रहा है जिससे हमला किए जाने की घटना के संबंध में उसके परिसाक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराया जा सके ।

21. मृतक महंतप्पा की माता गिरियव्वा (अभि. सा. 1) के परिसाक्ष्य से यह दर्शित होता है कि वह अभियुक्तों को जानती है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में जब वह घर पर थी, लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) वहां आई और उसने गिरियव्वा को बताया कि उसके पुत्र महंतप्पा पर पुंडप्पा (अभियुक्त सं. 1) और सिद्दप्पा (अभियुक्त सं. 2) द्वारा क्रमशः कुल्हाड़ी और डंडे से हमला किया गया है । इसके अतिरिक्त, गिरियव्वा ने यह कथन किया है कि इसके पश्चात् वह खेत पर गई और उसने महंतप्पा को जमीन पर पड़ा हुआ देखा जिसके सिर और गर्दन के पीछे क्षति आई हुई थी । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि उस समय तक भीमप्पा (अभि. सा. 10), रंगनगौड़ा (अभि. सा. 11) भी उनके खेत पर आ गए । भीमप्पा (अभि. सा. 10) ने अपने पुत्र महंतप्पा को ग्राम में भेज दिया और वहां से उसे बागलकोट अस्पताल लाया गया जहां पर उसे भर्ती कराया गया ।

इस साक्षी ने प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि उस दिन 6.00 बजे पूर्वाह्न में उसका पति बागलकोट के लिए रवाना हुआ था । लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) उसके घर आई और उसे घटना के बारे में बताया और उस समय वह घर पर अकेली थी ।

शिकायतकर्ता गिरियव्वा (अभि. सा. 1) के परिसाक्ष्य से यह स्पष्ट है कि जब वह घर पर मौजूद थी, लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में वहां आई और उसने गिरियव्वा को अभियुक्त सं. 1 पुंडप्पा द्वारा महंतप्पा पर किए गए हमले की घटना के बारे में बताया । शिकायतकर्ता के अभिसाक्ष्य का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि महंतप्पा भोजन करने के पश्चात् फसल की देख-रेख करने के लिए प्रातःकाल जल्दी घर से रवाना हुआ था । इस तथ्य की संपुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से होती है कि मृतक ने प्रातःकाल में जल्दी ही भोजन कर लिया था । शवपरीक्षण रिपोर्ट में डा. हनमंत (अभि. सा. 16) ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि मृतक का आमाशय ज्यों का त्यों है जिसमें भोजन की पर्याप्त मात्रा है और उसमें भी चावल की मात्रा अधिक है । अतः, जहां तक मृतक महंतप्पा के प्रातःकाल में घर से जल्दी ही निकलने का संबंध है, गिरियव्वा (अभि. सा. 1) के परिसाक्ष्य से डा. हनमंत (अभि. सा. 16) के चिकित्सीय साक्ष्य की पूर्ण रूप से संपुष्टि होती है ।

22. डा. हनमंत (अभि. सा. 16) के साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि उसने तारीख 5 जुलाई, 1997 को 1.00 बजे अपराह्न में महंतप्पा की परीक्षा की थी और उसने निम्न छह छिन्न घाव पाए :–

1. करोटि के बाएं पार्श्विक भाग में 5 सें. मी. × 2 सें. मी. माप का छिन्न घाव है जो अस्थि में 2 सें. मी. तक गहरा है जिसमें रक्त के थक्के बने हुए हैं ।

2. शिखर में छिन्न घाव के साथ करोटि में अस्थिभंग है तथा रक्त का थक्का बना हुआ है, घाव की दिशा अनुदैर्ध्य है और मात्र 5 सें. मी. × 2 सें. मी. है तथा गहराई 2 सें. मी. है ।

3. बाएं कान के पीछे की ओर 7 सें. मी. × 3 सें. मी. माप का छिन्न घाव है और मांसपेशियां विदीर्ण हैं ।

4. अनुकपालीय भाग की दाईं ओर अस्थिभंग सहित 5 सें. मी. × 3 सें. मी. माप का छिन्न घाव है जिसकी गहराई 2 सें. मी. है और घाव में रक्त के थक्के बने हुए हैं ।

5. अनुकपालीय भाग के दाईं ओर 4 सें. मी. × 2 सें. मी. माप का छिन्न घाव है जो 2 सें. मी. अस्थि तक गहरा है और उसमें रक्त के थक्के बने हुए हैं ।

6. करोटि के दाएं पार्श्विक भाग में 2 सें. मी. × 1 सें. मी. माप का छिन्न घाव है जिसकी गहराई 1 सें. मी. है और उसमें रक्त के थक्के बने हुए हैं ।

चिकित्सक ने घाव प्रमाण-पत्र (प्रदर्श पी-16) जारी किया । साक्ष्य में यह भी उल्लेख है कि महंतप्पा की मृत्यु हो जाने पर, उसने शव का शवपरीक्षण किया और निम्न क्षतियां पाईं :–

सिर के पूरे बाल उस्तरे से साफ किए हुए हैं और करोटि में सात घाव हैं जिनमें टांके लगे हुए हैं, इन सभी घावों को खोला गया है और इनकी जांच की गई है ।

1. दाईं पार्श्व कपालास्थि में अवनत अस्थिभंग सहित शिखर के मध्य में मध्य-रेखा के साथ लगा हुआ विदीर्ण घाव है जिसकी माप 5 सें. मी. × 1 सें. मी. है और गहराई 1 सें. मी. है ।

2. करोटि के दाएं पार्श्वकपालीय भाग में तिरछा विदीर्ण घाव है ।

3. अनुकपालीय भाग के ऊपर की ओर 5 सें. मी. × 2 सें. मी. माप का विदीर्ण घाव है जिसकी गहराई 1 सें. मी. और दिशा अनुप्रस्थ है ।

4. बाएं कान के पीछे की ओर 4 सें. मी. × 1 सें. मी. माप का विदीर्ण घाव जिसकी गहराई 1 सें. मी. और दिशा तिरछी है ।

5. गर्दन के बालों के निकट विदीर्ण घाव है जिसकी माप 5 सें. मी. × 2 सें. मी. है और गहराई 2 सें. मी. है, यह घाव अस्थि तक गहरा है और इसकी दिशा अनुप्रस्थ है ।

6. अनुकपालीय भाग के बाईं ओर विदीर्ण घाव है जिसकी माप 5 सें. मी. × 2 सें. मी. है, यह घाव 1 सें. मी. अस्थि तक गहरा है और इसकी दिशा तिरछी है ।

7. दाएं अनुकपालीय भाग में अनुप्रस्थ विदीर्ण घाव है जिसकी गहराई 2 सें. मी. है, अनुकपालास्थि में अस्थि भंग भी है ।

8. दाएं कपोल पर गहरे-भूरे रंग की रगड़ है जिसकी माप 2 सें. मी. × 2 सें. मी. है ।

9. ललाट के दाईं ओर 4 सें. मी. × 3 सें. मी. माप की गहरे-भूरे रंग की रगड़ है ।

इस प्रकार करोटि पर पाए गए छिन्न घावों की प्रकृति से यह स्पष्ट हो जाता है कि महंतप्पा की मृत्यु सिर पर वार किए जाने के कारण मस्तिष्क में क्षति कारित होने से हुई है जो संभवतया भारी धारदार हथियार, जिसे प्रदर्श पी-17 के रूप में चिह्नांकित किया गया है, से कई बार चोट मारने के परिणामस्वरूप पहुंची है । इसमें कोई विवाद नहीं है कि मृतक की मृत्यु का कारण मानव वध है ।

23. उपर्युक्त चिकित्सीय साक्ष्य से भी लक्षमव्वा (अभि. सा. 7), संगप्पा (अभि. सा. 8) और चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) के कथनों की संपुष्टि होती है ।

24. सामान्यतः, खेत जोतने का कार्य प्रातःकाल में और सूर्यास्त होने तक किया जाता है । यह एक आम तरीका है । अतः, संगप्पा (अभि. सा. 8) और चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) का मौजूद होकर इस घटना को देखना लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) के परिसाक्ष्य से साबित होता है । मात्र इस कारण से कि साक्षियों के कथनों में एक घंटा या आधा घंटा जैसे कुछ फर्क हैं, मामले पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य, विशेषकर लक्षमव्वा (अभि. सा. 7), संगप्पा (अभि. सा. 8) और चंद्रशेखर (अभि. सा. 9) जैसे प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य संगत, विश्वासप्रद और एक दूसरे के साथ पूर्णतया संपुष्ट हैं और उनकी विश्वसनीयता पर संदेह किए जाने की कोई गुंजाइश नहीं है । इन साक्षियों के साक्ष्य की संपुष्टि पूर्ण रूप से भीमप्पा (अभि. सा. 10) रंगनगौडा (अभि. सा. 11) के परिसाक्ष्य से भी होती है जो लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) से घटना के बारे में जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् घटनास्थल पर गए थे । उपर्युक्त सभी तथ्य अभियुक्त सं. 1 के दोषी होने की ओर सीधे संकेत करते हैं ।

25. हमने यह विचार किया है कि अभियुक्तों और मृतक के परिवार के बीच मेड़ को लेकर विवाद चल रहा था । सोमप्पा (अभि. सा. 2) ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि घटना से 10 से 15 दिन पूर्व चंद्रप्पा (मृतक का पिता) और अभियुक्त अपने खेतों की मेड़ के विवाद के संबंध में उनके पास आए थे । स्वयं इस साक्षी ने और सोनप्पा (अभि. सा. 3), आरोपी साक्षी - 23 और आरोपी साक्षी - 24 ने दोनों पक्षकारों को सलाह दी और उनके खेतों की मेड़ की सीमा नियत की । इसके पश्चात्, पुंडप्पा (अभियुक्त सं. 1) ने एक प्राइवेट सर्वेक्षक द्वारा अपनी भूमि की माप

कराई । प्राइवेट सर्वेक्षक ने बुजुर्गों द्वारा नियत की गई मेड़ की सीमा की पुष्टि कर दी । लक्षमव्वा (अभि. सा. 7) के साक्ष्य में यह उल्लेख है कि जब वह गिरियव्वा (अभि. सा. 1) के खेत के निकट भेड़ें चरा रही थी, तब मृतक महंतप्पा और अभियुक्त सं. 1 के बीच मेड़ के पत्थरों को लगाने के संबंध में कहा-सुनी हो गई थी । इस साक्षी के साक्ष्य से यह भी पता चलता है कि यह अभियुक्त सं. 1 द्वारा मेड़ से पत्थर हटाया गया था और मृतक महंतप्पा ने हटाए हुए पत्थर को उसी जगह पर लगाने का प्रयास किया था । इस पर अभियुक्त सं. 1 ने मृतक महंतप्पा के सिर और गर्दन के पीछे कुल्हाड़ी से वार किए जिसके परिणामस्वरूप मृतक के शरीर में अस्थिभंग हो गया और फलस्वरूप अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गई ।

26. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने और साक्षियों के परिसाक्ष्य से साबित किए गए अभियुक्तों के कृत्यों का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर, हमारा यह मत है कि अभियुक्तों का उक्त कार्य, जिसके परिणामस्वरूप महंतप्पा की मृत्यु हुई है, न तो दंड संहिता की धारा 300 के अधीन अपवाद की परिधि में आता है और न ही दंड संहिता की धारा 304 की परिधि में ।

यह गंभीर और अचानक प्रकोपन या सद्भाव के अंतर्गत किया गया कार्य नहीं है और न ही यह ऐसा कार्य है जिसे अभियुक्तों ने यह विश्वास किया हो कि यह कार्य सद्भावपूर्ण, विधिपूर्ण और आवश्यक है जिसे अपने कर्तव्य का निर्वहन करने के लिए किया गया हो और न ही यह ऐसा कार्य है जो अचानक लड़ाई में पूर्वचिन्तन के बिना कारित किया गया हो । अतः, अपील न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त सं. 1 का कृत्य दंड संहिता की धारा 300 के संघटकों के अधीन आता है जो दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय है ।

27. हमें आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है । कोई भी गुणता न होने के कारण यह अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

———

[2014] 4 उम. नि. प. 202

स्टेट बैंक आफ पटियाला

बनाम

प्रीतम सिंह बेदी और अन्य

7 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा

स्टेट बैंक आफ इंडिया (समनुषंगी बैंक) अधिनियम, 1959 (1959 का 38) – धारा 63 [सपठित स्टेट बैंक आफ पटियाला (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 – विनियम 14, 18 और 29] – स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति – पेंशन – चूंकि पेंशन के लिए अर्हक सेवा 20 वर्ष नियत की गई थी इसलिए वे कर्मचारी जिन्होंने 19 वर्ष 6 मास से अधिक सेवा पूरी कर ली थी विनियम 18 के फायदे के हकदार होंगे जिसमें यह उपबंध है कि 6 मास से अधिक की खंडित सेवा को एक वर्ष की सेवा माना जाना चाहिए और इसलिए उन्हें पेंशन से वंचित नहीं किया जा सकता है ।

स्टेट बैंक आफ पटियाला स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम, 2000 नाम से ज्ञात स्कीम के अनुसरण में ऐसे अनेक कर्मचारियों को बैंक से सेवानिवृत्त होने के लिए अनुज्ञात किया गया था जिन्होंने 19½ वर्ष से अधिक सेवा पूरी कर ली थी और बैंक द्वारा स्टेट बैंक आफ पटियाला (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 के अनुसार पेंशन नहीं दी गई थी । उन्होंने उच्च न्यायालय के समक्ष बैंक और उसके प्राधिकारियों को स्कीम के अनुसार उनके पक्ष में पेंशन निर्मोचित करने का निदेश देने के लिए समावेदन किए । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने 2010 की सिविल अपील सं. 172 में कुछ व्यथित कर्मचारियों (प्रत्यर्थियों) द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाएं मंजूर कर लीं और उन्हें पेंशन का संदाय करने का निदेश दिया । उक्त आदेश के विरुद्ध बैंक ने खंड न्यायपीठ के समक्ष 2008 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 312 फाइल की जिसने तारीख 9 जनवरी, 2009 के आक्षेपित निर्णय द्वारा लेटर्स पेटेंट अपील खारिज कर दी और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को अभिपुष्ट कर दिया । 2008 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 312 में पारित उक्त आक्षेपित निर्णय को 2010 की सिविल अपील सं. 172 में चुनौती दी गई है । कुछ अन्य समरूप स्थिति वाले ऐसे कर्मचारियों ने भी, जिन्होंने 19½ वर्ष से अधिक सेवा पूरी कर ली

थी और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम के अधीन सेवानिवृत्त हो चुके थे, ऐसी ही रिट याचिकाएं फाइल की थीं जो कि मंजूर कर ली गई थीं । बैंक ने संबंधित निर्णयों के विरुद्ध भिन्न-भिन्न लेटर्स पेटेंट अपीलें फाइल की थीं और वे भी तारीख 9 जनवरी, 2009 के निर्णय को ध्यान में रखते हुए भिन्न-भिन्न आदेशों द्वारा खारिज कर दी गई थीं । उन निर्णयों के विरुद्ध, जिनमें पूर्ववर्ती विनिश्चय का अनुसरण किया गया है, बैंक द्वारा शेष सिविल अपीलें फाइल की गई हैं । ये सभी अपीलें स्टेट बैंक आफ पटियाला द्वारा पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की चंडीगढ़ न्यायपीठ द्वारा पारित विभिन्न निर्णयों और आदेशों के विरुद्ध फाइल की गई हैं किन्तु चूंकि इनमें एकसमान विवाद्यक अंतर्वलित थे इसलिए इनकी सुनवाई एक साथ की गई थी और इनका आक्षेपित सामान्य निर्णय द्वारा निपटारा किया गया था । प्रस्तुत मामले में यह प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होता है कि प्रत्यर्थी स्टेट बैंक आफ पटियाला (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 के अधीन पेंशन के लिए हकदार हैं अथवा नहीं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यर्थियों ने सेवानिवृत्ति की तारीख को बैंक में 10 वर्ष से अधिक सेवा पूरी कर ली थी, इसलिए वे विनियम 14 के अनुसार अर्हक सेवा की अपेक्षा पूरी करते हैं । अपीलार्थी-बैंक की ओर से इस संबंध में कोई विवाद नहीं किया गया है कि प्रत्यर्थियों ने सभी अपीलों में बैंक में 19½ वर्ष से अधिक सेवा पूरी कर ली थी । उदाहरणार्थ 2010 की सिविल अपील सं. 173 में प्रत्यर्थी सं. 1 ने बैंक में तारीख 4 मई, 1981 को सेवा आरंभ की थी और उसे 31 मार्च, 2001 को सेवोन्मुक्त किया गया था । इस प्रकार, उसने सेवोन्मुक्त किए जाने की तारीख को 19 वर्ष, 10 मास और 28 दिन की अर्हक सेवा पूरी कर ली थी । (पैरा 22 और 23)

पेंशन विनियम, 1995 के विनियम 18 में यह उपबंधित है कि यदि खंडित अवधि छह मास से अधिक है तो उसे एक वर्ष माना जाएगा । अतः, चूंकि सभी प्रत्यर्थी-रिट याचियों ने बैंक में 19½ वर्ष से अधिक सेवा पूरी कर ली थी इसलिए उनके बारे में यह माना जाना चाहिए कि उन्होंने 20 वर्ष की सेवा पूरी कर ली है । (पैरा 24)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	(2009) 5 एस. सी. सी. 313 : **बैंक आफ इंडिया** बनाम **के. मोहनदास और अन्य** ;	6, 11, 12, 23, 25

[2009] (2009) 3 एस. सी. सी. 217 :
बैंक आफ बड़ौदा बनाम **गणपत सिंह देवरा** ; 6,8,9,12, 23,25

[2008] (2008) 1 पी. एल. आर. 745 :
धर्म पाल सिंह बनाम **पंजाब नेशनल बैंक** । 3

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की सिविल अपील सं. 172, 173, 177, 178, 179, 180, 186, 187 और 2011 की सिविल अपील सं. 1916.

2003 की सिविल रिट याचिका सं. 6540 में 2008 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 312 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की चंडीगढ़ न्यायपीठ के तारीख 9 जनवरी, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री एल. नागेश्वर राव, अपर महासालिसिटर, संजय कपूर, अनमोल चंदन, (सुश्री) प्रियंका दास और (सुश्री) शुभ्रा कपूर

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एच. सी. अरोड़ा, रजत शर्मा, डा. कैलाश चन्द, आर. एस. कटारिया, एस. के. गुप्ता, बलबीर सिंह गुप्ता और सतपाल सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – ये सभी अपीलें स्टेट बैंक आफ पटियाला (जिसे इसमें इसके पश्चात् "बैंक" कहा गया है) द्वारा पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की चंडीगढ़ न्यायपीठ द्वारा पारित विभिन्न निर्णयों और आदेशों के विरुद्ध फाइल की गई हैं किन्तु चूंकि इनमें एकसमान विवाद्यक अंतर्वलित थे इसलिए इनकी सुनवाई एक साथ की गई थी और इनका आक्षेपित सामान्य निर्णय द्वारा निपटारा किया गया था ।

2. स्टेट बैंक आफ पटियाला स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम, 2000 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "स्कीम" कहा गया है) नाम से ज्ञात स्कीम के अनुसरण में ऐसे अनेक कर्मचारियों को बैंक से सेवानिवृत्त होने के लिए अनुज्ञात किया गया था जिन्होंने 19½ वर्ष से अधिक सेवा पूरी कर ली थी

और बैंक द्वारा स्टेट बैंक आफ पटियाला (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 (जिन्हें इसके पश्चात् "1995 के विनियम" कहा गया है) के अनुसार पेंशन नहीं दी गई थी । उन्होंने उच्च न्यायालय के समक्ष बैंक और उसके प्राधिकारियों को स्कीम के अनुसार उनके पक्ष में पेंशन निर्मोचित करने का निदेश देने के लिए समावेदन किए । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 22 अक्तूबर, 2008 के एक निर्णय द्वारा 2010 की सिविल अपील सं. 172 में कुछ व्यथित कर्मचारियों (प्रत्यर्थियों) द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाएं मंजूर कर लीं और उन्हें पेंशन का संदाय करने का निदेश दिया । उक्त आदेश के विरुद्ध बैंक ने खंड न्यायपीठ के समक्ष 2008 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 312 फाइल की जिसने तारीख 9 जनवरी, 2009 के आक्षेपित निर्णय द्वारा लेटर्स पेटेंट अपील खारिज कर दी और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को अभिपुष्ट कर दिया । 2008 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 312 में पारित तारीख 9 जनवरी, 2009 के उक्त आक्षेपित निर्णय को 2010 की सिविल अपील सं. 172 में चुनौती दी गई है ।

कुछ अन्य समरूप स्थिति वाले ऐसे कर्मचारियों ने भी, जिन्होंने 19½ वर्ष से अधिक सेवा पूरी कर ली थी और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम के अधीन सेवानिवृत्त हो चुके थे, ऐसी ही रिट याचिकाएं फाइल की थीं जो कि मंजूर कर ली गई थीं । बैंक ने संबंधित निर्णयों के विरुद्ध भिन्न-भिन्न लेटर्स पेटेंट अपीलें फाइल की थीं और वे भी तारीख 9 जनवरी, 2009 के निर्णय को ध्यान में रखते हुए भिन्न-भिन्न आदेशों द्वारा खारिज कर दी गई थीं । उन निर्णयों के विरुद्ध, जिनमें पूर्ववर्ती विनिश्चय का अनुसरण किया गया है, बैंक द्वारा शेष सिविल अपीलें फाइल की गई हैं ।

3. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा **धर्म पाल सिंह** बनाम **पंजाब नेशनल बैंक**[1] वाले मामले में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के पूर्ववर्ती विनिश्चय के प्रति निर्देश करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि पेंशन विनियम 28 के अधीन संदेय थी और यह कि विनियम 29 लागू नहीं होगा । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने इसके आगे निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "12. विनियम 28 का परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि विनियमों या समझौतों में विनिर्दिष्ट अधिवर्षिता की आयु पूरी कर

---

[1] (2008) 1 पी. एल. आर. 745.

लेने पर पेंशन संदेय होती है । अधिवर्षिता की आयु सेवा विनियमों में अधिकथित की गई है जो कि अब कथित रूप से 60 वर्ष है और यह इससे पूर्व 58 वर्ष थी । किन्तु स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम के अधीन, जो कि रिट याचियों के अनुसार समझौते के समान होगी, 15 वर्ष की सेवा या 40 वर्ष की आयु अपेक्षित है जो कि रिट याची स्वीकृत रूप से पूरी करते थे । विनियम 12 के अधीन समयपूर्व सेवानिवृत्ति पर बैंक के आदेशों के आधार पर पेंशन तब संदेय है यदि कर्मचारी उस दिन पेंशन/अधिवार्षिकी के लिए अन्यथा हकदार था । विनियम 14 और विनियम 28 के साथ पढ़ने पर उक्त आयु 10 वर्ष है और यदि उसे स्कीम के साथ पढ़ा जाए तो यह 15 वर्ष की सेवा या 40 वर्ष की आयु है और दोनों ही दशाओं में कर्मचारी पेंशन स्कीम के अंतर्गत आते थे । माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति से संबंधित विनियम 29 लागू नहीं होता था । इस प्रकार, बैंक की ओर से दी गई यह दलील स्वीकार नहीं की जा सकती है कि विनियम 29 लागू होता था और पेंशन 20 वर्ष के पश्चात् ही संदेय थी ।"

विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए मत को खंड न्यायपीठ द्वारा अभिपुष्ट कर दिया गया था और लेटर्स पेटेंट अपील खारिज कर दी गई थी ।

4. अपीलार्थी-बैंक की ओर से विनियम 13, विनियम 28, विनियम 29, विनियम 32 और विद्वान् काउन्सेल ने स्टेट बैंक आफ पटियाला स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम के खंड 3 के प्रति निर्देश किया और निम्न प्रकार दलील दी :–

"(क) विनियम 14, जो कि अर्हक सेवा के संबंध में है, पंजाब नेशनल बैंक बनाम धर्म पाल वाले मामले में इस माननीय न्यायालय के निर्णय के कारण लागू नहीं होता है ;

(ख) स्टेट बैंक आफ पटियाला स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम का खंड 3 विशेषकर बैंक आफ इंडिया के मामले में इस माननीय न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए पेंशन के लिए लागू नहीं होगा क्योंकि यह स्कीम के अधीन आवेदन करने की पात्रता के बारे में है ;

(ग) विनियम 32 भी, जिसका संबंध समयपूर्व सेवानिवृत्ति से है, लागू नहीं होगा क्योंकि कर्मचारी की सेवानिवृत्ति बैंक के आदेशों के आधार पर लोक हित में नहीं थी बल्कि दंड स्वरूप थी और इसके

अलावा स्टेट बैंक आफ पटियाला स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम किसी समझौते के रूप में नहीं थी ;

(घ) इस प्रकार केवल विनियम 29 "स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति पर पेंशन" उन व्यक्तियों के मामले में पेंशन अनुदत्त करने के लिए लागू होगा जो स्टेट बैंक आफ पटियाला स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम के अधीन आवेदन करते हैं ;

(ङ) यदि यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि स्टेट बैंक आफ पटियाला स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम विनियम 29 के अनुसार स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम नहीं है तो इसका अभिप्राय यह होगा कि प्रत्यर्थी-कर्मचारी विनियम 2(म) के अनुसार सेवानिवृत्त नहीं हुए हैं और वे पेंशन विनियमों के अंतर्गत नहीं आते हैं और इसलिए वे पेंशन के हकदार नहीं हैं ।"

5. दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउन्सेल द्वारा निम्नलिखित निवेदन किए गए थे :–

"(i) सभी प्रत्यर्थियों ने बैंक में 19½ वर्ष से अधिक किन्तु 20 वर्ष से कम सेवा पूरी कर ली है, इसलिए वे विनियम 18 के अधीन खंडित वर्ष को एक वर्ष माने जाने के हकदार हैं । इसलिए, विनियम 18 को ध्यान में रखते हुए प्रत्यर्थियों के बारे में यह माना जाना चाहिए कि उन्होंने 20 वर्ष की सेवा पूरी कर ली है ।

(ii) प्रत्यर्थी विनियम 32 के अधीन पेंशन के लिए हकदार हैं अन्यथा प्रत्यर्थी विनियम 29 के अधीन भी पेंशन के लिए हकदार हैं ।"

6. अपीलार्थी-बैंक की ओर से विद्वान् काउन्सेल ने **बैंक आफ बड़ौदा** बनाम **गणपत सिंह देवरा**[1] और **बैंक आफ इंडिया** बनाम **के. मोहनदास और अन्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लिया । दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउन्सेल के अनुसार प्रस्तुत मामला **बैंक आफ बड़ौदा** (उपर्युक्त) और **बैंक आफ इंडिया** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चयों से भिन्न है क्योंकि प्रत्यर्थी स्टेट बैंक आफ पटियाला (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 के विनियम 18, विनियम 28, विनियम 29 और विनियम 32 द्वारा मार्गदर्शित होते हैं जो कि अन्य बैंकों के उपबंधों से भिन्न हैं ।

---

[1] (2009) 3 एस. सी. सी. 217.

[2] (2009) 5 एस. सी. सी. 313.

7. प्रस्तुत मामले में यह प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होता है कि प्रत्यर्थी स्टेट बैंक आफ पटियाला (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 के अधीन पेंशन के लिए हकदार हैं अथवा नहीं ।

8. इस न्यायालय द्वारा **बैंक आफ बड़ौदा** (उपर्युक्त) वाले मामले में इसी प्रकार के प्रश्न पर विचार किया गया था । उक्त मामले में, बैंक आफ बड़ौदा के कर्मचारी बैंक आफ बड़ौदा कर्मचारी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम, 2001 के अनुसार सेवानिवृत्त हुए थे । तथापि, उन्होंने 20 वर्ष की सेवा पूरी नहीं की थी इसलिए उन्हें उनके पेंशन विनियम, 1995 के अधीन पेंशन के फायदे से वंचित रखा गया था । उक्त मामले में, इस न्यायालय ने बैंक आफ बड़ौदा विनियमों के विनियम 28 की अवेक्षा की थी, जैसा कि वह तारीख 2 जनवरी, 2004 को किए गए संशोधन से पूर्व विद्यमान था, जो कि निम्नलिखित रूप में था :–

> *"28. अधिवर्षिता पेंशन – अधिवर्षिता पेंशन उस कर्मचारी को अनुदत्त की जाएगी जो सेवा विनियमों या समझौतों में विनिर्दिष्ट अपनी अधिवर्षिता की आयु पूरी करने पर सेवानिवृत्त हुआ है ।"

9. इस न्यायालय ने **बैंक आफ बड़ौदा** (उपर्युक्त) वाले मामले में संशोधित विनियम 28 की भी अवेक्षा की जो कि भारत के राजपत्र में तारीख 2 जनवरी, 2004 को प्रकाशित किया गया था और इसमें निम्न प्रकार उपबंधित है :–

> **"28. अधिवर्षिता पेंशन – अधिवर्षिता पेंशन उस कर्मचारी को अनुदत्त की जाएगी जो सेवा विनियमों या समझौतों में विनिर्दिष्ट अपनी अधिवर्षिता की आयु पूरी करने पर सेवानिवृत्त हुआ है :

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

> "28. Superannuation pension – Superannuation pension shall be granted to an employee who has retired on his attaining the age of superannuation specified in the Service Regulations or settlements.
>
> **"28. Superannuation pension – Superannuation pension shall be granted to an employee who has retired on his attaining the age of superannuation specified in the Service Regulations or settlements.

परन्तु यह कि तारीख 1 सितम्बर, 2000 से पेंशन उस कर्मचारी को भी, जो अधिवर्षिता की आयु पूरी करने से पूर्व किन्तु 15 वर्ष की न्यूनतम अवधि की सेवा पूरी करने के पश्चात् सेवानिवृत्त होने का विकल्प अपनाता है, ऐसी स्कीम के निबंधनानुसार अनुदत्त की जाएगी जो बोर्ड द्वारा सरकार के अनुमोदन से ऐसे प्रयोजन के लिए विरचित की जाए ।"

10. इस न्यायालय ने उपर्युक्त उपबंधों और बैंक आफ बड़ौदा पेंशन विनियमों के विनियम 29 की अवेक्षा करने के पश्चात्, जो कि तात्विक रूप से समरूप हैं, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उक्त बैंक के प्रत्यर्थियों ने 1995 के विनियमों के विनियम 28 के अधीन उपबंधित अर्हक सेवा की अपेक्षित अवधि पूरी नहीं की थी, यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी बैंक आफ बड़ौदा के पेंशन विनियम, 1955 के अधीन पेंशन के लिए पात्र नहीं थे ।

11. इसके पश्चात्, इस न्यायालय की एक न्यायपीठ के समक्ष **बैंक आफ इंडिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में विभिन्न बैंकों के समरूप उपबंधों पर विचार किया गया था और उसने स्कीम और ऐसे विभिन्न उपबंधों के प्रति निर्देश करते हुए, जो कि प्रस्तुत उपबंधों के लगभग समरूप हैं, निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"33. स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम, 2000 लाने के समय बैंकों का पेंशन के संबंध में क्या आशय था ? क्या उसमें यह अभिव्यक्त रूप से स्पष्ट नहीं किया गया था कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की ईप्सा करने वाले कर्मचारी पेंशन विनियमों के अनुसार पेंशन के लिए पात्र होंगे ? यदि आशय यह था कि विनियम 29 में और विशेष रूप से उसके उप-विनियम (5) में किए गए उपबंध के अनुसार पेंशन नहीं दी जानी है तो वे स्वयं स्कीम में ही ऐसा कह सकते थे । तथापि, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम की विरचना करने में काफी विचार किया

Provided that, with effect from 1-9-2000 pension shall also be granted to an employee who opts to retire before attaining the age of superannuation, but after rendering service for a minimum period of 15 years in terms of any scheme that may be framed for such purposes by the Board with the approval of the Government."

गया था और पर्याप्त विचार-विमर्श करने के पश्चात् यह स्कीम विरचित की गई थी । पेंशन विनियमों के अनुसार पेंशन के लिए उपबंध करते समय जिस एकमात्र उपबंध को ध्यान में रखा गया होगा वह विनियम 29 था । स्पष्टतया, कर्मचारियों ने भी विनियम 29(5) के फायदे को ध्यान में रखा था जब उन्होंने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए पेशकश की थी क्योंकि स्वीकृत रूप से विनियम 28, जैसा कि वह उस समय विद्यमान था, कदापि लागू नहीं होता था । विनियम 30 से विनियम 34 में से कोई भी विनियम लागू नहीं होता था ।

37. विनियम 28 में किए गए संशोधन के बारे में अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि उसका आशय उन कर्मचारियों को इसके भीतर लाना था जिन्होंने 15 वर्ष से या उससे अधिक किन्तु 20 वर्ष से कम सेवा की थी । यह आशय भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के आर्थिक कार्य विभाग (बैंकिंग प्रभाग) द्वारा कार्मिक सलाहकार, भारतीय बैंक एसोसिएशन को भेजी गई तारीख 5 सितम्बर, 2000 की संसूचना से प्रतिबिंबित होता है ।

39. उक्त संसूचना से दो बातें तुरंत अवेक्षणीय हो जाती हैं । एक बात यह है कि पेंशन विनियम, 1995 के विनियम 29 के अनुसार कोई कर्मचारी 20 वर्ष की अर्हक सेवा के पश्चात् स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले सकता है । दूसरी बात यह है कि स्कीम में यह उपबंध है कि 15 वर्ष की सेवा या 40 वर्ष की आयु वाले कर्मचारी स्कीम के अधीन और विनियम 29 के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने के पात्र होंगे, ऐसे कर्मचारी, जिन्होंने 15 वर्ष की सेवा कर ली है या 40 वर्ष की आयु पूरी कर ली है किन्तु 20 वर्ष की सेवा पूरी नहीं की है, स्कीम के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने पर पेंशन संबंधी फायदों के पात्र नहीं होंगे ।

40. संसूचना में "ऐसे कर्मचारी" शब्दों का प्रयोग करना ऐसे कर्मचारियों के प्रति निर्देश करता है जिन्होंने 15 वर्ष की सेवा पूरी कर ली है किन्तु 20 वर्ष की सेवा पूरी नहीं की है और इसलिए विनियमों में संशोधन लाने का विनिश्चय किया गया था जिससे कि वे कर्मचारी, जिन्होंने 20 वर्ष की सेवा पूरी नहीं की है, पेंशन के फायदे से वंचित न हो जाएं । जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट संसूचना से प्रतिबिंबित होता है, विनियम 28 में संशोधन का आशय ऐसे कर्मचारियों को शामिल करना था जिन्होंने 15 वर्ष की सेवा तो पूरी कर ली थी

किन्तु 20 वर्ष की सेवा पूरी नहीं की थी । इसका आशय ऐसे विकल्पकर्ताओं को शामिल करना नहीं था जिन्होंने 20 वर्ष की सेवा पहले ही पूरी कर ली थी क्योंकि विनियम 29 में अंतर्विष्ट उपबंध उस आकस्मिकता को पूरा करते थे ।

46. पेंशन विनियमों को पेंशन के प्रयोजनों के लिए स्कीम का भाग बनाने का यथार्थ प्रभाव यह है कि पेंशन विनियमों को, उस सीमा तक, जहां तक वे लागू होते हैं, स्कीम के साथ पढ़ा जाना चाहिए । यह स्मरण रखना प्रासंगिक है कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम, 2000 के निर्वचन खंड में यह कहा गया है कि ऐसे शब्दों और पदों के, जो इस स्कीम में प्रयुक्त हैं किन्तु परिभाषित नहीं हैं और नियमों/विनियमों में परिभाषित हैं वे ही अर्थ होंगे जो नियमों/विनियमों में क्रमशः उनके हैं । स्कीम में "सेवानिवृत्ति" या "स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति" पदों को परिभाषित नहीं किया गया है । अतः, हमें सेवानिवृत्ति की उस परिभाषा पर निर्भर रहना होगा, जो विनियम 2(म) में दी गई है, जिसके अधीन विनियम 29 के अधीन आने वाली स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति को सेवानिवृत्ति समझा गया है । विनियम 29 में "इन विनियमों के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति" अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है । स्पष्टतः, स्कीम के प्रयोजनों के लिए इसे इस ब्यौरों में आवश्यक परिवर्तनों के अर्थ में समझना होगा । संविदा अधिनियम की धारा 23 प्रस्तुत तथ्यात्मक स्थिति में लागू नहीं होती है ।

48. यह सही है कि विनियम 28 की विधिमान्यता और वैधता को विवादग्रस्त नहीं किया गया है । ऐसा प्रकटतः इसलिए नहीं किया गया है क्योंकि कर्मचारियों के अनुसार, यद्यपि संशोधित विनियम भूतलक्षी प्रभाव से लागू किया गया था तथापि, वह संपूरित संविदा पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकता था । हमने ऊपर पहले ही उपदर्शित कर दिया है कि वर्ष 2002 में तारीख 1 सितम्बर, 2000 से प्रभावी विनियम 28 में संशोधन किस प्रकार स्कीम के अधीन उन विकल्पकर्ताओं को लागू नहीं हो सकता था जिन्होंने 20 वर्ष की सेवा पूरी कर ली थी । अतः, कर्मचारियों द्वारा विनियम 28 को चुनौती न देना तात्विक नहीं है । यह कहना सही नहीं है कि विनियम 29 का अवलंब लेकर विनियम 28 में किया गया संशोधन अनावश्यक हो जाता है ।

50. यह सही है कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम अपने आप में

एक संपूर्ण पैकेज है और यह संविदागत प्रकृति की है । तथापि, इस पैकेज में यह उपबंध किया गया है कि विकल्पकर्ता, अनुग्रह संदाय के अलावा पेंशन विनियमों के अधीन पेंशन के साथ-साथ अन्य फायदों के लिए भी पात्र होगा । स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति से संबंधित स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम, 2000 के प्रवर्तन के दौरान सुसंगत समय पर पेंशन विनियमों में एकमात्र उपबंध विनियम 29 था और उसके उप-विनियम (5) में उन विकल्पकर्ताओं के लिए, जिन्होंने 20 वर्ष की सेवा पूरी कर ली थी, पांच वर्ष और जोड़ने के अधिमान के लिए उपबंध किया गया था । अतः, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम, 2000 में 20 वर्ष की सेवा वाले विकल्पकर्ताओं को पेंशन विनियम, 1995 के विनियम 29(5) के अधीन अनुग्रह का संदाय करने के साथ-साथ पेंशन फायदे प्रदान करने की प्रकल्पना नहीं थी ।

51. स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम, 2000 लाने का संपूर्ण आशय बैंकों के कार्यबल में कमी लाना था जिसे बैंक इस तथ्य के बावजूद पूरा करने में समर्थ नहीं हुए थे कि कानूनी विनियमों में उन कर्मचारियों को, जिन्होंने 20 वर्ष की सेवा पूरी कर ली थी, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने के लिए उपबंध किया गया था । इसी कारण से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम, 2000 को अधिक आकर्षक बनाया गया था । तदनुसार, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम, 2000 कर्मचारियों के लिए एक आकर्षक पैकेज था क्योंकि वे इसके अलावा पेंशन विनियमों के अधीन पेंशन के साथ-साथ अनुग्रह राशि के रूप में विशेष फायदे प्राप्त कर रहे थे जिनमें उन कर्मचारियों के लिए, जिन्होंने 20 वर्ष की सेवा पूरी कर ली थी, पेंशन के प्रयोजनों के लिए पांच वर्ष की अर्हक सेवा के अधिमान का भी उपबंध किया था ।"

12. **बैंक आफ इंडिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने **बैंक आफ बड़ौदा** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्ति की अवेक्षा की किन्तु उसे निम्नलिखित मताभिव्यक्ति द्वारा प्रभेदित किया :–

"61. इस न्यायालय द्वारा बैंक आफ बड़ौदा [(2009) 3 एस. सी. सी. 217] वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियों को, जिन्हें ऊपर उद्धृत किया गया है और जिनका बैंकों द्वारा अपनी इस दलील के समर्थन में अवलंब लिया गया है, तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में समझना

होगा, अर्थात् यह कि कर्मचारी ने केवल 13 वर्ष की सेवा पूरी की थी और वह पेंशन विनियम, 1995 के अधीन पेंशन के लिए और विनियम 29(5) के अधीन पांच वर्ष की अर्हक सेवा जोड़े जाने का फायदा लेने के लिए पात्र नहीं था क्योंकि किसी कर्मचारी को 20 वर्ष की सेवा अवश्य पूरी कर लेनी चाहिए । उस मामले में अंतर्वलित प्रश्न इस मामले में विनिश्चित किए जाने वाले प्रश्न के समरूप नहीं था ।

62. बैंक आफ बड़ौदा (उपर्युक्त) वाले मामले में की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां महत्वपूर्ण हैं (एस. सी. सी. पृ. 221, पैरा 21) –

> '21. ...चूंकि ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकरण तथा उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया है या उसकी अवेक्षा नहीं की है कि प्रत्यर्थी पेंशन के लिए पात्र नहीं था क्योंकि उसने 15 वर्ष की अर्हक सेवा पूरी नहीं की थी ...।'

63. अतः, बैंक आफ बड़ौदा (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय स्पष्ट रूप से प्रभेदनीय है क्योंकि उस मामले में कर्मचारी ने विनियम 29(5) के अधीन अधिमानता का पात्र होने के लिए 20 वर्ष की सेवा पूरी करने की बात तो दूर अर्हक सेवा भी पूरी नहीं की थी और उसे प्रस्तुत संविवाद को लागू नहीं किया जा सकता है और न ही उस मामले में उस प्रश्न का विनिश्चय हो जाता है जो कि प्रस्तुत मामलों के समूह में विनिश्चित किया जाना है ।"

13. इस विवाद्यक का अवधारण करने के लिए स्टेट बैंक आफ पटियाला स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम, 2001 के सुसंगत उपबंधों, उस स्कीम की पृष्ठभूमि और स्टेट बैंक आफ पटियाला (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 के सुसंगत उपबंधों के प्रति निर्देश करना वांछनीय है ।

14. भारत सरकार की भारतीय बैंक एसोसिएशन के परामर्श के अनुसरण में बैंकों ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम आरंभ की जिसमें स्टेट बैंक आफ पटियाला स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम, 2000 भी है जो कि बैंक द्वारा तारीख 20 जनवरी, 2001 के परिपत्र सं. कार्मिक/स्वै.से.नि.स्कीम/48 द्वारा आरंभ की गई थी ।

स्कीम के खंड 3 में स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की पात्रता निम्न प्रकार विहित की गई थी :–

*"**खंड 3**

पात्रता

यह स्कीम बैंक के उन कर्मचारियों के सिवाय जिन्हें विनिर्दिष्ट रूप से अपात्र उल्लिखित किया गया, उन सभी स्थायी कर्मचारियों के लिए खुली होगी जिन्होंने 31 दिसम्बर, 2000 को 15 वर्ष की सेवा पूरी कर ली है या जिन्होंने 40 वर्ष की आयु पूरी कर ली है । आयु की गणना सेवा अभिलेख में प्रविष्ट जन्म-तारीख के आधार पर की जाएगी ।

सेवा की संगणना करते समय, उस अनुपस्थिति को, जिसकी गणना सेवा के रूप में की गई है, अपवर्जित किया जाएगा ।

यदि ऐसा कोई अधिकारी, जिसने आज्ञापक ग्रामीण या अर्ध-शहरी नियोजन (या संपूर्णतः या भागतः) पूरा नहीं किया है, स्टेट बैंक आफ पटियाला स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम के अधीन सेवानिवृत्ति के लिए आवेदन करता है तो उसके मामले का अनुमोदन करने से पूर्व उसकी प्रोन्नतियां तब वापस ले ली मानी जाएंगी यदि प्रोन्नति के पश्चात् पुष्टीकरण ऐसी आज्ञापक सेवा पूरी करने के अध्यधीन है ।"

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"**Clause 3**

Eligibility

The scheme will be open to all permanent employees of the Bank, except those specifically mentioned as 'ineligible who have put in 15 years of service or have completed 40 years of age as on 31st December, 2000. Age will be reckoned on the basis of the date of birth as entered in service record.

While calculating the period of service, absence, which is reckoned as service, will be excluded.

If an officer, who has not completed mandatory rural or semi-urban assignment (either wholly or partly) submits an application for retirement under SBP VRS before approving his case, his promotions would stand withdrawn if confirmation subsequent to promotion is subject to completing such mandatory service."

15. अनुग्रह राशि के अलावा, जोकि इस स्कीम के अधीन प्रस्तावित थी, निम्नलिखित अन्य फायदे भी उसमें विहित किए गए थे :–

*"**खंड 7**

अन्य फायदे

(i) सुसंगत तारीख को प्रचलित अनुदेशों के अधीन संदेय उपदान ।

(ii) स्टेट बैंक आफ पटियाला कर्मचारी भविष्य निधि नियमों के अनुसार सुसंगत तारीख को भविष्य निधि अंशदान ।

(iii) की गई सेवा के वास्तविक वर्षों के आधार पर सुसंगत तारीख को लागू नियमों के अनुसार यथास्थिति, पेंशन या भविष्य निधि में बैंक का अंशदान ।

* * *"

16. प्रत्यर्थियों ने, जिन्होंने 19½ वर्ष से अधिक सेवा पूरी कर ली थी, उपर्युक्त स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम के लिए आवेदन किया और उन्हें इसकी अनुज्ञा दी गई थी । उन्हें अधिकतर फायदों का संदाय किया जा चुका है किन्तु उन्हें पेंशनिक फायदों का संदाय नहीं किया गया था । इसलिए, उन्हें उच्च न्यायालय के समक्ष समावेदन करना पड़ा था ।

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"**Clause 7**

Other benefits

(i) Gratuity as payable under the extant instructions on the relevant date.

(ii) Provident Fund contribution as per SBP Employees' Provident Rules as on relevant date.

(iii) Pension or Bank's contribution to Provident Fund as the case may be as per rules applicable on the relevant date on the basis of actual years of service rendered.

* * *"

17. स्टेट बैंक आफ पटियाला (कर्मचारी) पेंशन विनियम, 1995 बैंक के पूर्णकालिक कर्मचारियों को लागू होते हैं । विनियम 2(ब) में अर्हक सेवा की परिभाषा दी गई है और विनियम 2(म) में सेवानिवृत्ति की परिभाषा दी गई है, वे निम्नलिखित रूप में हैं :–

*"2(ब) 'अर्हक सेवा' से सेवा में रहते हुए या अन्यथा की गई सेवा अभिप्रेत है जिसे इन विनियमों के अधीन पेंशन के प्रयोजन के लिए हिसाब में लिया जाएगा ;

2(म) 'सेवानिवृत्ति' से –

(क) सेवा विनियमों या समझौतों में विनिर्दिष्ट अधिवर्षिता की आयु पूरी कर लेने पर ;

(ख) इन विनियमों के विनियम 29 में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति पर ;

(ग) सेवा विनियमों या समझौते में विनिर्दिष्ट अधिवर्षिता की आयु पूरी करने से पूर्व बैंक द्वारा समयपूर्व सेवानिवृत्त करने पर ;

बैंक की सेवा समाप्त होना अभिप्रेत है ; "

18. अध्याय 4 अर्हक सेवा के संबंध में है । विनियम 14 में अर्हक सेवा की परिभाषा निम्न प्रकार दी गई है :–

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"2(w) 'qualifying service' means the service rendered while on duty or otherwise which shall be taken into account for the purpose of pension under these regulations;

2(y) 'retirement' means cessation from Bank's service –

(a) on attaining the age of superannuation specified in Service Regulations or Settlements;

(b) on voluntary retirement in accordance with provisions contained in regulation 29 of these regulations;

(c) on premature retirement by the Bank before attaining the age of superannuation specified in Service Regulations or Settlement;"

*"14. **अर्हक सेवा**

इन विनियमों में अंतर्विष्ट अन्य शर्तों के अधीन रहते हुए, ऐसा कोई कर्मचारी, जिसने अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख को या उस तारीख को जिसको वह सेवानिवृत्त हो गया समझा जाएगा, बैंक में कम से कम दस वर्ष की सेवा पूरी कर ली है, पेंशन के लिए अर्हित होगा ।"

अर्हक सेवा के प्रयोजनार्थ उक्त अध्याय 4 के अधीन विनियम 18 में एक वर्ष से कम के खंडित सेवाकाल को निम्नलिखित रूप में विहित किया गया है :–

"18. **एक वर्ष के कम का खंडित सेवाकाल – यदि किसी कर्मचारी के सेवाकाल में एक वर्ष के कम का सेवाकाल शामिल है तो यदि ऐसी खंडित अवधि छह मास से अधिक है तो उसे एक वर्ष माना जाएगा और यदि ऐसी खंडित अवधि छह मास या उससे कम है तो उसे छोड़ दिया जाएगा ।"

19. अध्याय 5 का संबंध पेंशन के वर्गों से है । विनियम 28 अधिवर्षिता पेंशन के संबंध में है, जोकि निम्न प्रकार है :–

***"28. **अधिवर्षिता पेंशन** – अधिवर्षिता पेंशन उस कर्मचारी को अनुदत्त की जाएगी जो सेवा विनियमों या समझौतों में विनिर्दिष्ट अपनी अधिवर्षिता की आयु पूरी करने पर सेवानिवृत्त हुआ है ।"

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"14. **Qualifying Service**

Subject to the other conditions contained in these regulations, an employee who has rendered a minimum of ten years of service in the Bank, on the date of his retirement or on the date on which he is deemed to have retired shall qualify for pension. "

"18. Broken period of service of less than one year** – If the period of service of an employee includes broken period of service is less than one year, then if such broken period is more than six months, it shall be treated as one year and if such broken period is six months or less it shall be ignored."

***"28. **Superannuation Pension** – Superannuation pension shall be granted to an employee who has retired on his attaining the age of superannuation specified in the Service Regulations or settlements. "

20. विनियम 29 स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति पर पेंशन के संबंध में है, जिसका सुसंगत प्रभाग निम्नलिखित रूप में है :–

*"29. **स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति पर पेंशन** –

(1) 1 नवम्बर, 1993 को या उसके पश्चात् किसी भी समय कोई कर्मचारी, जिसने 20 वर्ष की अर्हक सेवा पूरी कर ली है, सक्षम प्राधिकारी को लिखित में देकर सेवा से निवृत्त हो सकेगा :

परन्तु यह कि यह उप-विनियम ऐसे कर्मचारी को, जोकि प्रतिनियुक्ति पर या अध्ययन छुट्टी पर विदेश में है, तब तक लागू नहीं होगा जब तक स्थानांतरित किए जाने या भारत में लौटने के पश्चात् उसने भारत में अपना पदभार ग्रहण नहीं कर लिया है और कम से कम एक वर्ष की अवधि के लिए सेवा नहीं कर ली है :

परन्तु यह और कि यह उप-विनियम ऐसे कर्मचारी को लागू नहीं होगा, जो किसी स्वशासी निकाय या किसी लोक सेक्टर उपक्रम या कंपनी या संस्थागत निकाय में, चाहे वह निगमित हो या नहीं, जहां पर वह स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की ईप्सा करते समय प्रतिनियुक्ति पर है स्थायी तौर पर आमेलित होने के लिए सेवानिवृत्ति की ईप्सा करता है :

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"29. **Pension on Voluntary Retirement** –

(i) On or after the 1st day of November, 1993, at any time after an employee has completed twenty years of qualifying service he may, by writing to the competent authority retire from service :

Provided that this sub-regulation shall not apply to an employee who is on deputation or on study leave abroad unless after having been transferred or having returned to India and has served for a period of not less than one year :

Provided further that this sub-regulation shall not apply to an employee who seeks retirement from service for being absorbed permanently in an autonomous body or a public sector undertaking or company or institution body, whether incorporated or not to which he is on deputation at the time of seeking voluntary retirement :

परन्तु यह उप-विनियम ऐसे कर्मचारी को लागू नहीं होगा जिसके बारे में यह समझा जाता है कि वह विनियम 2 के खंड (1) के अनुसार सेवानिवृत्त हो गया है ।

* * *

(5) इस विनियम के अधीन स्वेच्छया सेवानिवृत्त होने वाले कर्मचारी की अर्हक सेवा इस शर्त के अधीन रहते हुए पांच वर्ष से अनधिक अवधि के लिए बढ़ाई जाएगी कि ऐसे कर्मचारी द्वारा की गई कुल अर्हक सेवा किसी भी दशा में तीस वर्ष से अधिक नहीं होगी और वह उसे उसकी अधिवर्षिता की तारीख से परे नहीं ले जाती है ।'

21. समयपूर्व सेवानिवृत्ति पेंशन के लिए विनियम 32 के प्रति निर्देश किया जा सकता है जो निम्नलिखित रूप में है :–

*"32. **समयपूर्व सेवानिवृत्ति पेंशन**

समयपूर्व सेवानिवृत्ति पेंशन ऐसे कर्मचारी को दी जाएगी –

(क) जिसने कम से कम दस वर्ष की सेवा पूरी कर ली है;

(ख) जो बैंक द्वारा लोक हित में सेवा विनियमों या समझौते में विनिर्दिष्ट किसी अन्य कारण से समयपूर्व सेवानिवृत्त

Provided that this sub-regulation shall not apply to an employee who is deemed to have retired in accordance with clause (1) of Regulation 2.

* * *

(5) The qualifying service of an employee retiring voluntarily under this regulation shall be increased by a period not exceeding five years, subject to the condition that the total qualifying service rendered by such employee shall not in any case exceed thirty years and it does not take him beyond the date of superannuation."

*"32. **Premature Retirement Pension**

Premature retirement pension may be granted to an employee who, –

(a) has rendered minimum ten years of service;

(b) retired from service on account of orders of the Bank

करने संबंधी आदेशों के कारण सेवानिवृत्त होता है, यदि वह अन्यथा उस तारीख को अधिवर्षिता पर ऐसी पेंशन के लिए हकदार होता ।"

विनियम 33 ऐसे कर्मचारी के संबंध में है जिसे शास्ति के तौर पर अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया गया है और जोकि प्रस्तुत मामले में लागू नहीं होता है ।

22. प्रत्यर्थियों ने सेवानिवृत्ति की तारीख को बैंक में 10 वर्ष से अधिक सेवा पूरी कर ली थी, इसलिए वे विनियम 14 के अनुसार अर्हक सेवा की अपेक्षा पूरी करते हैं ।

23. अपीलार्थी-बैंक की ओर से इस संबंध में कोई विवाद नहीं किया गया है कि प्रत्यर्थियों ने सभी अपीलों में बैंक में 19½ वर्ष से अधिक सेवा पूरी कर ली थी । उदाहरणार्थ, 2010 की सिविल अपील सं. 173 में प्रत्यर्थी सं. 1 – प्रकाश चन्द ने बैंक में तारीख 4 मई, 1981 को सेवा आरंभ की थी और उसे 31 मार्च, 2001 को सेवोन्मुक्त किया गया था । इस प्रकार, उसने सेवोन्मुक्त किए जाने की तारीख को 19 वर्ष, 10 मास और 28 दिन की अर्हक सेवा पूरी कर ली थी ।

24. पेंशन विनियम, 1995 के विनियम 18 में यह उपबंधित है कि यदि खंडित अवधि छह मास से अधिक है तो उसे एक वर्ष माना जाएगा । अतः, चूंकि सभी प्रत्यर्थी-रिट याचियों ने बैंक में 19½ वर्ष से अधिक सेवा पूरी कर ली थी इसलिए उनके बारे में यह माना जाना चाहिए कि उन्होंने 20 वर्ष की सेवा पूरी कर ली है । उपर्युक्त प्रश्न **बैंक आफ बड़ौदा** (उपर्युक्त) या **बैंक आफ इंडिया** (उपर्युक्त) वाले मामलों में न तो उठाया गया था और न ही विनिश्चित किया गया था ।

25. उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी-बैंक **बैंक आफ बड़ौदा** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का फायदा नहीं ले सकता है क्योंकि उक्त मामले में जो कर्मचारी न्यायालय के समक्ष पक्षकार हैं उन्होंने 20 वर्ष की सेवा पूरी कर ली थी । **बैंक आफ इंडिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के अनुसार चूंकि

---

to retire prematurely in the public interest for any other reason specified in service regulations or settlement, if otherwise he was entitled to such pension on superannuation on that date."

प्रत्यर्थी-रिट याचियों ने 20 वर्ष की सेवा पूरी कर ली थी इसलिए वे विनियम 29 के फायदे के लिए हकदार हैं ।

26. ऊपर अभिलिखित निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित निर्णय के प्रति निर्देश से अपीलों में कोई सार नहीं है और वे तदनुसार खारिज की जाती हैं । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपीलें खारिज की गईं ।

ग्रो.

[2014] 4 उम. नि. प. 221

सी. के. दासेगौड़ा और अन्य

बनाम

कर्नाटक राज्य

15 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 378 [सपठित दंड संहिता, 1860 की धारा 324] – अपील न्यायालय की साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने, पुनर्विलोकन करने या उस पर पुनर्विचार करने तथा दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करने की शक्ति – व्याप्ति – यद्यपि अपील न्यायालय को दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील में उस साक्ष्य का, जिसके आधार पर निर्णय किया गया है, पुनर्विलोकन करने, पुनर्मूल्यांकन करने तथा पुनर्विचार करने की पूर्ण शक्ति प्राप्त है और ऐसी शक्ति के प्रयोग के संबंध में कोई निर्बंधन, परिसीमा या शर्त नहीं है तथापि, अपील न्यायालय को यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि जहां निर्दोषिता की उपधारणा अभियुक्त के पक्ष में हो और उसकी निर्दोषिता विचारण न्यायालय द्वारा प्रबलित होती हो और जहां दो युक्तियुक्त मत संभव हों और एकमत अभियुक्त के पक्ष में हो तो अपील न्यायालय को दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।

इस मामले में अपीलार्थियों को विचारण न्यायालय द्वारा दंड संहिता

की धारा 34 के साथ पठित धारा 324 के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त किया गया था । इस आदेश के विरुद्ध राज्य ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की और उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के दोषमुक्ति के आदेश को उलटते हुए अपीलार्थियों को दोषसिद्ध कर दिया । अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को उचित ठहराते हुए उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त किया । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत तथ्यों और विधिक साक्ष्य का परिशीलन किया है । न्यायालय ने दोनों पक्षकारों की दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार भी किया है । अभिलेख पर प्रस्तुत तथ्य और साक्ष्य के आधार पर इस न्यायालय का यह मत है कि अभिलेख पर किसी भी सारभूत सामग्री के अभाव में विचारण न्यायालय के आदेश को अनुचित विनिश्चय मानकर उलटने में उच्च न्यायालय ने त्रुटि की है । अतः ऊपर उल्लिखित मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधिक सिद्धांतों के आधार पर और इन सिद्धांतों को इस मामले के अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और साक्ष्यों को लागू करते हुए, इस न्यायालय का यह मत है कि उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत किसी भी ऐसे विधिक और तथ्यात्मक साक्ष्य के अभाव में अपीलार्थियों की दोषसिद्धि के आदेश को अपास्त करने में त्रुटि की है जिसके द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय में अभिलिखित निष्कर्षों और कारणों को अनुचित साबित किया जा सके । अपीलार्थियों की ओर से दी गई दलीलें पूर्णतया साबित की गई हैं क्योंकि वे उपर्युक्त मामलों में अधिकथित विधिक सिद्धांतों के अनुसरण में हैं । (पैरा 16 और 18)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2007] (2007) 4 एस. सी. सी. 415 :
चन्द्रप्पा और अन्य बनाम **कर्नाटक राज्य** । 17

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 1381.

2005 की दांडिक अपील सं. 1256 में कर्नाटक उच्च न्यायालय, बंगलुरू के तारीख 11 अगस्त, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सुश्री किरण सूरी (वरिष्ठ अधिवक्ता), (सुश्री) अपूर्वा उपमन्यु और डा. (श्रीमती) विपिन गुप्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री वी. एन. रघुपति

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा ने दिया ।

न्या. गौड़ा – यह अपील उन अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई है जिन्होंने 2005 की दांडिक अपील सं. 1256 में कर्नाटक उच्च न्यायालय, बंगलुरू द्वारा पारित किए गए तारीख 11 अगस्त, 2010 के उस निर्णय और अंतिम आदेश की शुद्धता पर प्रश्न उठाया था जिसके अनुसार विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए अपीलार्थियों की दोषमुक्ति के उस आदेश को अपास्त किया था जिसके अनुसार विचारण न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 34 के साथ पठित धारा 324 के अधीन दंडनीय क्षति कारित करने के अलग-अलग अपराध के लिए अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया गया था ।

2. अपीलार्थियों के पक्षकथन का मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक सुसंगत तथ्यों का उल्लेख निम्न रूप में किया गया है और यह भी मूल्यांकन किया गया है कि क्या अभियुक्त इस अपील में प्रार्थना किए गए अनुतोष को पाने के हकदार हैं या नहीं ।

3. अभियोजन का यह पक्षकथन है कि तारीख 11 अगस्त, 1999 को लगभग पूर्वाह्न में केमपन्ना (अभि. सा. 3) अपने बच्चों के लिए दूध लेने के लिए साइकिल से शिकायतकर्ता के मकान पर गया । जब शिकायतकर्ता और अभि. सा. 3 वापस आ रहे थे, अभियुक्त 1 से अभियुक्त 10 ने घातक हथियारों से उन पर हमला किया । अभियोजन पक्ष का यह अभिकथन है कि अभियुक्त 1 ने हल के लोहे के फलक से अभि. सा. 3 के सिर पर हमला किया । अभियुक्त 3 ने अभि. सा. 3 की पीठ और जंघा पर हमला किया । अभियुक्त 4 ने अभियुक्त 3 की दोनों टांगों पर हल के लोहे के फलक से हमला किया । अभियुक्त 2 ने अभि. सा. 1 के बाएं कंधे पर लोहे के सरिए से हमला किया । अभियुक्त 6, अभियुक्त 8 और अभियुक्त 10 ने अभि. सा. 1 को लातें मारीं । अभियुक्त 5 और अभियुक्त 7 ने भाग्यम्मा (अभि. सा. 6) पर हल के लोहे के फलक से हमला किया और अभियुक्त 9 ने उसको लातें मारीं ।

4. तारीख 11 अगस्त, 1999 को 9.00 बजे पूर्वाह्न में पुलिस के समक्ष एक शिकायत (प्रदर्श पी-1) दर्ज कराई गई । अन्वेषक अधिकारी द्वारा 2000 का आपराधिक मामला सं. 728 रजिस्ट्रीकृत किया गया । आहतों को लगभग 2.00 बजे अपराह्न में अस्पताल ले जाया गया । अभि. सा. 3 की टांग की अन्तर्जंघिका और बहिर्जंघिका और टखने में अस्थिभंग हो गया । अभि. सा. 6 को साधारण क्षतियां पहुंचीं । जलैया (अभि. सा. 4) और शिवन्ना (अभि. सा. 9) इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं ।

5. अभियुक्तों के गिरफ्तार किए जाने के पश्चात्, उनके स्वेच्छया बताए जाने पर तात्विक वस्तु 1 से 3, 4 और 5 (हल के लोहे का फलक) तथा तात्विक वस्तु 6 (लोहे का सरिया) बरामद किए गए । तथापि, इन हथियारों पर रक्त-जैसे कोई भी अपराध में फंसाने वाले चिह्न नहीं हैं । अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 114 के साथ पठित धारा 143, 147, 148, 323, 324, 326 और 327 के अधीन अपराध कारित किए जाने के लिए आरोपित किया गया । इसके पश्चात्, विद्वान् मजिस्ट्रेट ने अभिकथित अपराधों का संज्ञान लिया और 2000 का आपराधिक मामला सं. 728 रजिस्ट्रीकृत किया । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 209 के उपबंधों का अनुपालन करते हुए इस मामले को विचारण के लिए सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया क्योंकि दंड संहिता की धारा 307 के अधीन किए गए अपराध के लिए मामला एकमात्र रूप से सेशन न्यायालय में ही चलाया जाना था । अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने की मांग की । अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में अभि. सा. 1 से अभि. सा. 10 की परीक्षा कराई और प्रदर्श पी-1 से पी-9 तक दस्तावेजों को चिह्नांकित किया तथा तात्विक वस्तु 1 से 6 को प्रदर्शित किया । अभियुक्त अपीलार्थियों ने प्रदर्श डी-1 को चिह्नांकित किया और उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन अभिलिखित किए जाने के समय पर अपने लिखित उत्तर भी प्रस्तुत किए ।

6. अभि. सा. 1 ने साक्ष्य में यह कथन किया है कि अभियुक्त 2 ने उस पर लोहे के सरिए से हमला किया था, अभियुक्त 5 ने उसे दबोच लिया था, अभियुक्त 1 ने अभि. सा. 3 पर लोहे के सरिए से हमला किया था । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि अभियुक्त 4 ने हल के लोहे के फलक से अभि. सा. 3 की टांगों पर हमला किया था । अभियुक्त 3, अभियुक्त 6 और अभियुक्त 7 गदे लिए हुए थे और उन्होंने अभि. सा. 3

पर हमला किया । अभियुक्त 1 ने अन्य अभियुक्तों को अभि. सा. 1 की हत्या करने के लिए उकसाया था ।

7. अभि. सा. 3 के साक्ष्य से भी यह प्रकट होता है कि अभि. सा. 4 ने उसकी टांगों और हाथों पर हल के लोहे के फलक से हमला किया था । अभियुक्त 6, अभियुक्त 7 और अभियुक्त 5 ने उसकी पीठ, जंघा और कंधों पर गदों से हमले किए । अन्य अभियुक्तों ने उसको लातें मारीं ।

8. अभि. सा. 6 ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि अभियुक्तों ने उस पर हमला किया था किन्तु वह उनके नाम नहीं बता सकती है । इस साक्षी को पक्षद्रोही साक्षी माना गया है ।

9. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियोजन पक्ष अभियुक्तों के विरुद्ध अभिकथित अपराधों में से किसी भी अपराध को साबित करने में असफल रहे हैं । इस मामले में कई आधारों पर युक्तियुक्त संदेह का तत्व दिखाई पड़ता है । संदेह का लाभ सदैव अभियुक्तों को दिया जाता है । तद्नुसार, विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 के अधीन यह आदेश किया कि अभियुक्त अपीलार्थी 1 से 10 की दोषमुक्ति दंड संहिता की धारा 114 के साथ पठित धारा 143, 147, 148, 323, 324, 326 और 307 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए की जाती है । इस आदेश से व्यथित होकर, कर्नाटक राज्य ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की जिसमें विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है ।

10. उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत तथ्यों और साक्ष्य के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि अपराधों की प्रकृति, साक्ष्य और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में वर्णन किए गए तथ्यों को दृष्टिगत करने पर यह प्रकट होता है कि अभियुक्त 3 ने हल के लोहे के फलक से अभि. सा. 3 पर हमला किया था । साक्ष्य में यह भी उल्लेख किया गया है कि अभियुक्त 4 ने भी हल के लोहे के फलक से अभि. सा. 3 पर हमला किया था, किन्तु क्षति प्रमाणपत्र में अभियुक्त 4 की मौजूदगी या उसके द्वारा अपराध में भाग लिए जाने के संबंध में कोई भी उल्लेख नहीं है । यह स्पष्ट है कि अंतर्जंघिका और बहिर्जंघिका में अस्थिभंग हुआ है जो साइकिल से गिरने पर भी हो सकता है । अस्थिभंग से संबंधित क्षति साशय कारित नहीं की गई है । अतः हमला किए जाने की प्रकृति और रीति, जैसा कि वर्णन

किया गया है, केवल यही कहा जा सकता है कि अभियुक्त अभि. सा. 1 और अभि. सा. 3 को पृथक्तः क्षति कारित करने के लिए दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 324 के अधीन दोषी हैं । अतः, उच्च न्यायालय ने अपीलार्थियों को दोषसिद्ध किया और प्रत्येक आहत को दस-दस हजार रुपए जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर एक वर्ष का साधारण कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया ।

11. अभियुक्त अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के विनिश्चय को अनेक तथ्यों और विधिक प्रतिवादों को उठाते हुए चुनौती दी है और उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त करने के लिए प्रार्थना की है ।

12. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल सुश्री किरण सूरी ने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के आदेश को उलटने में त्रुटि की है क्योंकि विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य, अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य में पाई गई असंगतताओं और विरोधाभासों और पक्षकारों के बीच पूर्ववर्ती शत्रुता, अभियोजन साक्षियों के कथन अभिलिखित किए जाने में हुए विलंब और प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथनों का समुचित मूल्यांकन करने के पश्चात् ही अभियुक्त-अपीलार्थियों की दोषमुक्ति की थी, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि युक्तियुक्त रूप से उससे अभियुक्त के दोषी होने का संदेह होता है ।

13. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 324 के अधीन अभियुक्त अपीलार्थियों की दोषसिद्धि पूर्णतया मनमानी, अयुक्तियुक्त और दंड संहिता के उपर्युक्त उपबंधों के प्रतिकूल है ।

14. विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और क्षति प्रमाणपत्र में हमलावरों के नामों का उल्लेख किए जाने में फर्क है और अभियुक्त अपीलार्थियों द्वारा किए गए अभिकथित हमले से संबंधित हेतु को भी अभियोजन पक्ष द्वारा साक्ष्य के आधार पर साबित नहीं किया गया है ।

15. इसके प्रतिकूल, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 3 प्रत्यक्षदर्शी आहत साक्षी हैं । इस तथ्य की संपुष्टि अभि. सा. 5 और अभि. सा. 7 के चिकित्सीय साक्ष्य से होती है कि अभियुक्त अपीलार्थियों ने इन व्यक्तियों पर लोहे के सरिए, गुला और गदे से हमला किया है । विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी

दलील दी गई है कि अपीलार्थियों ने पूर्ववर्ती शत्रुता के कारण शिकायतकर्ता पर हमला किया है । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल के अनुसार अभि. सा. 2 स्वतंत्र साक्षी है । अतः विद्वान् काउंसेल के अनुसार विधि-विरुद्ध जमाव, बलवा और हत्या करने के आशय से घातक हथियार से घोर क्षति कारित करने के संघटक साबित नहीं किए गए हैं ।

16. हमने अभिलेख पर प्रस्तुत तथ्यों और विधिक साक्ष्य का परिशीलन किया है । हमने दोनों पक्षकारों की दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार भी किया है । अभिलेख पर प्रस्तुत तथ्य और साक्ष्य के आधार पर हमारा यह मत है कि अभिलेख पर किसी भी सारभूत सामग्री के अभाव में विचारण न्यायालय के आदेश को अनुचित विनिश्चय मानकर उलटने में उच्च न्यायालय ने त्रुटि की है ।

17. **चन्द्रप्पा** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा निम्न अभिनिर्धारित किया गया है :–

> 39. हरिजन तिरुपाल, हैदराबाद **बनाम** लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद [(2002) 6 एस. सी. सी. 470] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया कि –
>
> > "12. निस्संदेह, उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के आदेश या दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध अपील में प्रथम अपील न्यायालय के रूप में अपने स्वयं के स्वतंत्र निष्कर्ष निकालने के लिए साक्ष्य का पुनर्विलोकन करने की पूर्ण शक्ति है । तथापि, यह दोषमुक्ति के आदेश में सहज रूप से या मात्र इस कारण से हस्तक्षेप नहीं करेगा कि एक अन्य मत भी संभव है, क्योंकि दोषमुक्ति का आदेश पारित करने के साथ ही अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषिता की उपधारणा प्रबल और दृढ़ हो जाती है । उच्च न्यायालय मात्र इस कारण से दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करने में उचित नहीं होगा क्योंकि यह दोषमुक्ति अभिलिखित करने के लिए विचारण न्यायालय के समान कार्य कर रहा है ; उच्च न्यायालय पर दोषमुक्ति का आदेश उलटते समय एक कर्तव्य अधिरोपित किया गया है कि वह अभियुक्त को दोषमुक्त करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों की

---

[1] (2007) 4 एस. सी. सी. 415.

परीक्षा करे और उन पर चर्चा करे और तब उन कारणों का खण्डन करे । यदि उच्च न्यायालय ऐसा प्रयोग करने में असफल रहता है तब निर्णय घोर शैथिल्यता से ग्रस्त होगा ।"

40. रामानन्द यादव **बनाम** प्रभु नाथ झा [(2003) 12 एस. सी. सी. 606] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया कि –

"21. अपील न्यायालय पर उस साक्ष्य का पुनर्विलोकन करने पर कोई रोक नहीं है जिसके आधार पर दोषमुक्ति का आदेश किया गया है । सामान्यतया दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि अभियुक्त की निर्दोषिता की उपधारणा दोषमुक्ति द्वारा और भी प्रबल हो जाती है । दांडिक न्याय प्रणाली का प्रमुख सिद्धांत यह है कि दांडिक मामलों में यदि प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर दो निष्कर्ष निकाले जाने संभव हों जिनमें से एक अभियुक्त की दोषिता की ओर और दूसरा उसकी निर्दोषिता की ओर इंगित करता हो, तब अभियुक्त के पक्ष वाला मत अंगीकृत किया जाना चाहिए । न्यायालय को मुख्य रूप से यह सुनिश्चित करने के लिए विचार करना चाहिए कि न्याय हानि का निवारण किया जाए । न्याय हानि, जो दोषी व्यक्ति की दोषमुक्ति से उत्पन्न होती है, वह एक निर्दोष व्यक्ति की दोषसिद्धि से हुई न्याय हानि से कम नहीं होती । ऐसे एक मामले में जहां ग्राह्य साक्ष्य की अनदेखी की जाती है, वहां अपील न्यायालय पर ऐसे एक मामले में जहां अभियुक्त दोषमुक्त किया गया है, यह सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए कि क्या किसी अभियुक्त ने कोई अपराध कारित किया है या नहीं, साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने का कर्तव्य अधिरोपित किया गया है ।"

41. पुनः कल्लू **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य [(2006) 10 एस. सी. सी. 313 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 831] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया कि –

"8. दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील का विनिश्चय करते समय अपील न्यायालय की शक्ति दोषसिद्धि के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करते समय प्रयोग की गई शक्ति से कोई कम नहीं

है । दोनों प्रकार की अपीलों में संपूर्ण साक्ष्य का पुनर्विलोकन करने के लिए शक्ति होती है । तथापि, महत्वपूर्ण भिन्नता यह है कि दोषमुक्ति के आदेश में अपील न्यायालय द्वारा वहां हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा जहां विचारण न्यायालय का निर्णय साक्ष्य पर आधारित है और निकाला गया निष्कर्ष युक्तियुक्त और सत्याभ है । यह मात्र इस कारण से विचारण न्यायालय के विनिश्चय को नहीं उलटेगा कि एक भिन्न मत संभव है । अपील न्यायालय यह बात ध्यान में रखेगा कि अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषिता की उपधारणा है और अभियुक्त किसी संदेह का लाभ पाने का हकदार है । इसके अतिरिक्त यदि अपील न्यायालय हस्तक्षेप करने का निश्चय करता है तब, इसे विचारण न्यायालय के विनिश्चय से भिन्न मत व्यक्त करने के लिए कारण देने चाहिएं ।'

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

42. हमारी इस सुविचारित राय में उपर्युक्त विनिश्चयों से दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध फाइल की गई अपील पर विचार करते समय अपील न्यायालय की शक्तियों के संबंध में निम्नलिखित सामान्य सिद्धांत प्रतिपादित हुए हैं –

(1) अपील न्यायालय को उस साक्ष्य का पुनर्विलोकन, पुनर्मूल्यांकन और पुनर्विचार करने की पूर्ण शक्ति प्राप्त है जिसके आधार पर दोषमुक्ति का आदेश किया गया है ।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अंतर्गत ऐसी शक्ति के प्रयोग पर कोई परिसीमा, निर्बन्धन या शर्त नहीं है और अपील न्यायालय अपने समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर तथ्य और विधि दोनों ही प्रश्नों पर अपने स्वयं के निष्कर्ष निकाल सकेगा ।

(3) विभिन्न अभिव्यक्तियां जैसे 'सारभूत और बाध्यकारी कारण', 'मान्य और पर्याप्त कारण', 'अत्यन्त प्रबल परिस्थितियां', 'गलत निष्कर्ष', 'स्पष्ट त्रुटियां' इत्यादि से दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील पर विचार करते समय अपील न्यायालय की व्यापक शक्तियों को कम करने के लिए आशयित नहीं हैं । ऐसी शब्द-रचनाएं, साक्ष्य का पुनर्विलोकन करने की

न्यायालय की शक्ति को सीमित करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष निकालने की अपेक्षा अपील न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करने की अनिच्छुकता पर बल देने के लिए 'अलंकारिक भाषा' की प्रकृति की अधिक हैं ।

(4) तथापि, अपील न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि दोषमुक्ति के मामले में अभियुक्त के पक्ष में दोहरी उपधारणा होती है । प्रथमतः, उसे दांडिक विधि शास्त्र के मूलभूत सिद्धांत के अधीन उपलब्ध निर्दोषिता की उपधारणा, यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि सक्षम न्यायालय द्वारा उसकी दोषिता साबित न कर दी जाए । दूसरे, अभियुक्त की दोषमुक्ति होने पर उसकी निर्दोषिता की उपधारणा विचारण न्यायालय द्वारा पुनः प्रबल, पुष्ट और दृढ़ हो जाती है ।

(5) यदि अभिलेख पर के साक्ष्य के आधार पर दो युक्तियुक्त निष्कर्ष निकाले जाने संभव हों तब अपील न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए दोषमुक्ति के निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।

18. अतः ऊपर उल्लिखित मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधिक सिद्धांतों के आधार पर और इन सिद्धांतों को इस मामले के अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और साक्ष्यों को लागू करते हुए, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत किसी भी ऐसे विधिक और तथ्यात्मक साक्ष्य के अभाव में अपीलार्थियों की दोषसिद्धि के आदेश को अपास्त करने में त्रुटि की है जिसके द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय में अभिलिखित निष्कर्षों और कारणों को अनुचित साबित किया जा सके । अपीलार्थियों की ओर से दी गई दलीलें पूर्णतया साबित की गई हैं क्योंकि वे उपर्युक्त मामलों में अधिकथित विधिक सिद्धांतों के अनुसरण में है ।

19. अतः, हम उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हैं और विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश को प्रवृत्त करते हैं । अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./अनू.

अपोलो पशु-चिकित्सा आयुर्विज्ञान महाविद्यालय

बनाम

राजस्थान राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् और अन्य

25 जुलाई, 2014

मुख्य न्यायमूर्ति आर. एम. लोढ़ा और न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय

भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 (1984 का 52) – धारा 15, 19 और 21 प्रथम अनुसूची [सपठित भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् विनियम, 2008 का विनियम 2(न) और भारतीय पशु-चिकित्सा (रजिस्ट्रीकरण) विनियम, 1992 का विनियम 2(ग) तथा भारतीय चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1956 की धारा 11 और 19] – राजस्थान राज्य द्वारा दो महाविद्यालयों को पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिक्री पाठ्यक्रम की शिक्षा देने के लिए भारत संघ द्वारा अनुज्ञा अनुदत्त करने के अधीन रहते हुए, अनापत्ति प्रमाणपत्र जारी किया जाना – राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय द्वारा संबद्धता प्रदान किया जाना – भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा समय-समय पर अनापत्ति प्रमाणपत्र अनुदत्त किया जाना – केन्द्रीय सरकार द्वारा उक्त महाविद्यालयों के नाम प्रथम अनुसूची में सम्मिलित न करके पाठ्यक्रम को मान्यता न दिया जाना – चूंकि केन्द्रीय सरकार किसी विनिर्दिष्ट महाविद्यालय या संस्था द्वारा दी गई पशु-चिकित्सा अर्हता को मान्यताप्राप्त अर्हता के रूप में घोषित करते हुए प्रथम अनुसूची में प्रविष्टि करने के लिए सशक्त है, इसलिए उक्त महाविद्यालय धारा 2(ञ) के अंतर्गत पशु-चिकित्सा संस्थाएं नहीं हैं किंतु इन महाविद्यालयों से पहले ही उत्तीर्ण होकर गए छात्रों की अर्हता को मान्यता प्रदान करने के लिए इसे प्रथम अनुसूची में सम्मिलित करने के लिए केन्द्रीय सरकार को निदेश जारी किया जाना उचित होगा ।

अपोलो पशु-चिकित्सा आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, जयपुर और महात्मा गांधी महाविद्यालय, भरतपुर राजस्थान में पशु-चिकित्सा विज्ञान और पशु पालन में स्नातक का पाठ्यक्रम प्रदान करने वाले दो प्राइवेट महाविद्यालय हैं । उक्त महाविद्यालयों के बहुत से छात्रों ने भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् और केन्द्रीय सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय (अब स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर के रूप में ज्ञात) द्वारा संचालित पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की परीक्षा

उत्तीर्ण की है । जिन विद्यार्थियों ने उपर्युक्त दो महाविद्यालयों से यह परीक्षा उत्तीर्ण की है, उन्होंने राजस्थान राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् के पास नामांकन कराया है और फिलहाल राज्य में और प्राइवेट सेक्टर में व्यवसायरत डाक्टर हैं । बहुत से ऐसे छात्र भी हैं जो उक्त महाविद्यालयों में अपनी पढ़ाई कर रहे हैं । राजस्थान राज्य द्वारा उपर्युक्त दोनों महाविद्यालय खोले जाने की अनुज्ञा भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा संबद्ध मान्यता प्रदान करने के अधीन रहते हुए दी गई थी । उक्त महाविद्यालयों द्वारा प्रदान किए गए पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक के पाठ्यक्रम राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय से संबद्ध हैं । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने समय-समय पर किए गए अनेक निरीक्षणों के पश्चात् उपर्युक्त दोनों महाविद्यालयों और इन महाविद्यालयों से उत्तीर्ण करने वाले छात्रों को प्रदान की गई डिग्रियों को मान्यता देने के लिए केन्द्रीय सरकार को सिफारिश की । बाद में, भारत सरकार ने तारीख 20 फरवरी, 2010 के आदेश द्वारा यह सूचित किया कि अपोलो पशु-चिकित्सा आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, जयपुर द्वारा प्रदान की गई डिग्रियों को मान्यता देना संभव नहीं पाया गया है । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा रजिस्ट्रार को केन्द्रीय सरकार के विनिश्चय के बारे में सूचित किया गया । राजस्थान राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् को भी अपने रजिस्टर से डाक्टरों के नाम हटाने के लिए कहा गया । अपोलो महाविद्यालय को और उक्त महाविद्यालय से उत्तीर्ण करने वाले छात्रों को प्रदान की गई डिग्रियों को मान्यता देने से इनकार करने वाले पूर्वोक्त आदेशों को उक्त महाविद्यालय के अनेक पूर्वछात्रों ने, जो व्यवसायरत डाक्टर हैं और जो उक्त महाविद्यालय से उत्तीर्ण हैं, तथा साथ ही उन छात्रों द्वारा जो अपोलो महाविद्यालय में पढ़ाई कर रहे हैं, उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई । इसी प्रकार के आदेश महात्मा गांधी महाविद्यालय को मान्यता देने से इनकार करते हुए भी किए गए । उक्त महाविद्यालय के छात्रों ने, जिनमें पूर्वछात्र भी हैं, भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम की पहली अनुसूची में महात्मा गांधी महाविद्यालय का नाम सम्मिलित करने के लिए भारत सरकार को समुचित अधिसूचना जारी करने का निदेश देने हेतु राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर न्यायपीठ, जयपुर के समक्ष समावेदन किया । रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने महात्मा गांधी महाविद्यालय के पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक पाठ्यक्रम को मान्यता देने के लिए विचार न करने का विनिश्चय किया और इसके बारे में संबंधित प्राधिकारियों को सूचित किया । उक्त पत्र को भी उच्च न्यायालय में लंबित रिट याचिका में चुनौती दी गई । पूर्वछात्रों

तथा अपोलो महाविद्यालय के छात्रों द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाओं की एकसाथ सुनवाई की गई और राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर न्यायपीठ, जयपुर द्वारा तारीख 17 नवम्बर, 2011 को एक सामान्य निर्णय द्वारा रिट याचिकाएं खारिज कर दी गईं और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद्/भारत संघ द्वारा अपोलो महाविद्यालय और उक्त महाविद्यालय से उत्तीर्ण हुए छात्रों को प्रदान की गई डिग्रियों को मान्यता देने से इनकार करने के लिए जारी किए गए आदेशों, पत्रों और अधिसूचनाओं को मान्य ठहराया । उपर्युक्त विनिश्चय का अनुसरण करते हुए, राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर न्यायपीठ, जयपुर के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 23 दिसम्बर, 2011 के निर्णय द्वारा उन छात्रों द्वारा फाइल गई रिट याचिका खारिज कर दी गई जो महात्मा गांधी महाविद्यालय से उत्तीर्ण होकर गए थे । उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की धारा 2(ङ), 2(ञ) और धारा 15 के संयुक्त वाचन से यह स्पष्ट होता है कि यदि भारत में पशु-चिकित्सा संस्था (विश्वविद्यालय) द्वारा, चाहे सीधे तौर पर स्वयं द्वारा या किसी मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा महाविद्यालय द्वारा पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की डिग्री, डिप्लोमा या अनुज्ञप्ति अनुदत्त किए जाते हैं, तो ऐसी पशु-चिकित्सा अर्हता की मान्यता आज्ञापक है । अधिनियम की धारा 19 की उपधारा (1) से यह स्पष्ट है कि धारा 12 के अधीन परिषद् द्वारा गठित समिति न केवल पशु-चिकित्सा संस्था (विश्वविद्यालय) का अपितु ऐसे महाविद्यालय और अन्य संस्थाओं, जहां पशु-चिकित्सा की शिक्षा दी जाती है, के भी निरीक्षण के लिए उस पशु-चिकित्सा संस्था (विश्वविद्यालय) द्वारा अनुदत्त पशु-चिकित्सा अर्हता की मान्यता के लिए केन्द्रीय सरकार से सिफारिश करने के प्रयोजन के लिए निरीक्षक नियुक्त कर सकती है । इसलिए वह महाविद्यालय और संस्था भी, जिसके माध्यम से पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिग्री दी जाती है, पशु-चिकित्सा संस्था (विश्वविद्यालय) द्वारा अनुदत्त पशु-चिकित्सा अर्हता की मान्यता के प्रयोजन के लिए अधिनियम की परिधि के अंतर्गत आते हैं । यद्यपि धारा 21 के शीर्षक से "मान्यता का वापस लिया जाना" दर्शित होता है और कोई भी यह कह सकता है कि यह बात विनिर्दिष्ट नहीं है कि पशु-चिकित्सा संस्था से संबद्ध महाविद्यालय या संस्था को केन्द्रीय सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त किया जाना चाहिए, किंतु धारा 21 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 15 में केन्द्रीय सरकार को समुचित

अनुसूची (पहली अनुसूची) में यह घोषित करते हुए प्रविष्टि करने के लिए सशक्त किया गया है कि किसी पशु-चिकित्सा संस्था (विश्वविद्यालय) से संबद्ध किसी विनिर्दिष्ट महाविद्यालय या संस्था के छात्रों को अनुदत्त की गई पशु-चिकित्सा अर्हता तब ही मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता होगी जब वह किसी विनिर्दिष्ट तारीख से पूर्व अनुदत्त की जाए अथवा यह कि उक्त पशु-चिकित्सा अर्हता विश्वविद्यालय से संबद्ध उक्त महाविद्यालय या संस्था के संबंध में मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता तब ही होगी जब वह किसी विनिर्दिष्ट तारीख के पश्चात् अनुदत्त की जाए । धारा 21 को इसके पार्श्व टिप्पण (शीर्षक) – "मान्यता का वापस लिया जाना" की बात को विचार में लाए बिना पूर्णतम अर्थ लगाया जाना चाहिए । पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम के उद्देश्य के कथन और प्रस्तावना की धारा 2(ङ), 2(ञ), धारा 15, 19 और 21 के साथ अर्थपूर्ण वाचन करने तथा विनियम, 1992 के विनियम 2(ग) के साथ पठित विनियम, 2008 के विनियम 2(ण) का उद्देश्यपरक अर्थान्वयन करने पर यह स्पष्ट है कि केवल वही पशु-चिकित्सा महाविद्यालय, जो पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन की शिक्षा दे रहा है और जिसके माध्यम से विश्वविद्यालय द्वारा डिग्री दी जाती है और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा मान्यताप्राप्त है और पहली अनुसूची में दर्शाया गया है, पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक के पाठ्यक्रम की शिक्षा देने के लिए पात्र हैं । अतः, ऊपर चर्चा किए गए उपबंधों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात्, यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक के पाठ्यक्रम की शिक्षा देने वाले किसी "पशु-चिकित्सा महाविद्यालय" के लिए भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की पहली अनुसूची के अधीन केन्द्रीय सरकार से मान्यताप्राप्त करना आज्ञापक है । (पैरा 33, 35, 38, 39 और 43)

यह विवादग्रस्त नहीं है कि अपोलो महाविद्यालय में छात्रों को राजस्थान प्री-मेडीकल/राजस्थान प्री-वैटरीनरी (आरपीएम/आरपीवी) खुली प्रवेश परीक्षा के अनुसरण में दाखिला दिया गया था । उन्होंने अपना पाठ्यक्रम पूरा किया और पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की । वे छात्र, जो अपोलो महाविद्यालय से पहले उत्तीर्ण होकर गए हैं, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय द्वारा अनुदत्त पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की बुनियादी डिग्री के धारक हैं, जो कि भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की पहली अनुसूची में प्रविष्ट मान्यताप्राप्त अर्हता है । यह भी विवादग्रस्त नहीं है कि ऐसे बहुत से

छात्र जो पहले उत्तीर्ण होकर गए हैं, सरकारी या प्राइवेट सेवा में हैं । वह एकमात्र आधार जिस पर अपोलो महाविद्यालय के उन छात्रों को, जो पहले ही पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की डिग्री परीक्षा उत्तीर्ण करके गए हैं, भिन्न समझा गया है यह है कि केन्द्रीय सरकार ने अपोलो महाविद्यालय को अधिसूचित नहीं किया है और तद्द्वारा इसे भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की पहली अनुसूची में सम्मिलित नहीं किया गया है । स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर संविधि द्वारा सम्यक् रूप से स्थापित विश्वविद्यालय है और यह परीक्षाओं का संचालन करने और पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिग्री देने के लिए पूर्णतः सक्षम है । इस विश्वविद्यालय द्वारा अनुदत्त पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिग्री को भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की पहली अनुसूची में ऐसी डिग्री के रूप में सम्मिलित किया गया है जो भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद्, जो कि संविधि द्वारा स्थापित सर्वोपरि व्यावसायिक निकाय है, द्वारा पूर्णतः मान्यताप्राप्त है और जिसे किसी विश्वविद्यालय द्वारा अनुदत्त पशु-चिकित्सा अर्हताओं को मान्यता देने का प्राधिकार है । न्यायालय की राय में, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित करके स्पष्ट गलती की है कि चूंकि छात्रों के पास पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की जो डिग्री है वह ऐसी नहीं है जिसे किसी मान्यताप्राप्त महाविद्यालय से अभिप्राप्त किया गया हो और इसे भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् (रजिस्ट्रीकरण) विनियम, 1992 के अधीन रजिस्ट्रीकरण के प्रयोजन और अन्य प्रयोजन के लिए एक विधिमान्य अर्हता समझा जा सके । महात्मा गांधी महाविद्यालय के छात्रों के संबंध में भी ऐसी ही स्थिति है । वास्तव में, निरीक्षण समिति द्वारा प्रत्येक बार अनुकूल रिपोर्ट दी गई और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने महाविद्यालय को छात्रों को दाखिला देने के लिए अनुज्ञात किया तथा केन्द्रीय सरकार को पहली अनुसूची में महाविद्यालय के नाम की प्रविष्टि करके संशोधन करने की सिफारिश की । जब इस महाविद्यालय से उत्तीर्ण होकर गए छात्रों ने महात्मा गांधी महाविद्यालय को पहली अनुसूची में सम्मिलित करते हुए समुचित अधिसूचना जारी करने के लिए केन्द्रीय सरकार को निदेश देने हेतु उच्च न्यायालय के समक्ष समावेदन किया तो पशु-चिकित्सा परिषद् ने अपनी सिफारिश वापस ले ली । इस न्यायालय ने अपोलो महाविद्यालय से उत्तीर्ण होकर गए छात्रों के संबंध में जो मत व्यक्त किया है, वह उन छात्रों के बारे में भी समान रूप से लागू होता है जो महात्मा गांधी महाविद्यालय से उत्तीर्ण होकर गए हैं । वास्तव में, पश्चात्वर्ती गतिविधि से, जैसा कि

ऊपर उल्लेख किया गया है, यह दर्शित होता है कि भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने केन्द्रीय सरकार से अपोलो महाविद्यालय और महात्मा गांधी महाविद्यालय को मान्यता देने के लिए पुनः सिफारिश की है और केन्द्रीय सरकार ने पहले ही कतिपय प्रश्न उठाए हैं । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, न्यायालय का यह मत है कि उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ को उन छात्रों, जो पहले ही केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर से संबद्ध अपोलो महाविद्यालय और महात्मा गांधी महाविद्यालय से उत्तीर्ण होकर गए हैं, के संबंध में केन्द्रीय सरकार को भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की पहली अनुसूची में अपोलो महाविद्यालय के संबंध में तारीख 11 जुलाई, 2011 को या इससे पूर्व और महात्मा गांधी महाविद्यालय की बाबत तारीख 8 दिसम्बर, 2011 या इससे पूर्व की पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिग्री की मान्यता के प्रयोजन के लिए समुचित संशोधन करने का निदेश देते हुए एक संभव विधिक हल देना चाहिए था ताकि अपोलो महाविद्यालय और महात्मा गांधी महाविद्यालय को पहली अनुसूची में सम्मिलित किया जा सके । यह न्यायालय तद्नुसार निदेश देता है । जहां तक उन अन्य छात्रों का संबंध है, जो अपोलो महाविद्यालय और महात्मा गांधी महाविद्यालय में दाखिल किए गए हैं और अपनी पढ़ाई कर रहे हैं, केन्द्रीय सरकार को निदेश दिया जाता है कि वह भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् से एक नई रिपोर्ट मंगाए और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की धारा 21(4) के साथ पठित धारा 15(2) के अधीन समुचित आदेश पारित करे । यदि अपोलो महाविद्यालय और महात्मा गांधी महाविद्यालय को उस तारीख से परे, जैसा कि ऊपर आदेश किया गया है, मान्यता देना संभव नहीं है तो भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् को निदेश दिया जाता है कि वह छात्रों को पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक के पाठ्यक्रम को पूर्ण करने के लिए उनके संगत वर्ष के हिसाब से किन्हीं अन्य मान्यताप्राप्त महाविद्यालयों में स्थानांतरित करें । पूर्वोक्त कारणों से, यह न्यायालय राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर न्यायपीठ, जयपुर की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 17 नवम्बर, 2011 को पारित किए गए निर्णय और आदेश तथा राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर न्यायपीठ, जयपुर के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 23 दिसम्बर, 2011 को पारित किए गए निर्णय और आदेश तथा भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् को उनके रजिस्टर से डाक्टरों के नामों को हटाने का निदेश देते हुए जारी किए गए पत्रों को अपास्त करता है । (पैरा 45, 46, 47, 48, 49 और 50)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं. 6842. (इसके साथ 2014 की सिविल अपील सं. 6851, 6852, 6853, 6854, 6857, 6844-45, 6855 और 6856 की भी सुनवाई की गई ।)

2011 की सिविल रिट याचिका सं. 2635 में राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर स्थित जयपुर न्यायपीठ की खंड न्यायपीठ के तारीख 17 नवम्बर, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

हाजिर होने वाले पक्षकारों की ओर से

सर्वश्री पारस कुहाड, अपर महा-सालिसिटर, के. वी. विश्वनाथन्, आर. एफ. नरीमन, (सुश्री) इंदु मल्होत्रा, डा. राजीव धवन, हरीन पी. रावल, डा. मनीष सिंघवी, अपर महाधिवक्ता, कुश चतुर्वेदी, विवेक जैन (मैसर्स महालक्ष्मी बालाजी एंड कं.), (सुश्री) नम्रता सूद, निशता कुमार, विकास मेहता, अजय शर्मा, राजीव शर्मा, (सुश्री) नीलम शर्मा, गगन गुप्ता, राम निवास, निखिलेश रामचंद्रन्, भरत भूषण, (सुश्री) मधु मूलचंदानी, जितिन चतुर्वेदी, अमन आहलूवालिया, आर. नादुमरन, बलदेव अत्रेय, (सुश्री) ऋचा पांडे (डी. एस. मेहरा की ओर से), आशीष गर्ग, आफताब अली खान, नवीन प्रकाश, तुंगेश, (सुश्री) कामिनी जायसवाल, रोहित कुमार सिंह, सुमीत शर्मा, (सुश्री) रुचि कोहली, इरहाद अहमद, सुशील कुमार जैन, पुनीत जैन, (सुश्री) श्रृष्टि जैन और सूर्यनारायण (सुश्री) प्रगति नीखारा की ओर से

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – इजाजत दी गई ।

2. क्योंकि इन सभी अपीलों में भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 के अधीन पशु-चिकित्सा महाविद्यालय (महाविद्यालयों) की मान्यता से संबंधित एक जैसे विवाद्यक अंतर्वलित हैं, इसलिए इनकी एकसाथ सुनवाई की गई और इस सामान्य निर्णय द्वारा निपटारा किया जाता है ।

3. अपोलो पशु-चिकित्सा आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, जयपुर (जिसे संक्षेप में "अपोलो महाविद्यालय" कहा गया है) और महात्मा गांधी महाविद्यालय, भरतपुर (जिसे संक्षेप में "महात्मा गांधी महाविद्यालय" कहा गया है) राजस्थान में पशु-चिकित्सा विज्ञान और पशु पालन में स्नातक का पाठ्यक्रम प्रदान करने वाले दो प्राइवेट महाविद्यालय हैं । उक्त महाविद्यालयों के बहुत से छात्रों ने भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् और केन्द्रीय सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय (अब स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर के रूप में ज्ञात) द्वारा संचालित पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की है । जिन विद्यार्थियों ने उपर्युक्त दो महाविद्यालयों से यह परीक्षा उत्तीर्ण की है, उन्होंने राजस्थान राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् के पास नामांकन कराया है और फिलहाल राज्य में और प्राइवेट सेक्टर में व्यवसायरत डाक्टर हैं । बहुत से ऐसे छात्र भी हैं जो उक्त महाविद्यालयों में अपनी पढ़ाई कर रहे हैं ।

4. राजस्थान राज्य द्वारा उपर्युक्त दोनों महाविद्यालय खोले जाने की अनुज्ञा भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा संबद्ध मान्यता प्रदान करने के अधीन रहते हुए दी गई थी । उक्त महाविद्यालयों द्वारा प्रदान किए गए पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक के पाठ्यक्रम राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय (जिसे संक्षेप में "कृषि विश्वविद्यालय" कहा गया है) से संबद्ध है । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने समय-समय पर किए गए अनेक निरीक्षणों के पश्चात् उपर्युक्त दोनों महाविद्यालयों और इन महाविद्यालयों से उत्तीर्ण करने वाले छात्रों को प्रदान की गई डिग्रियों को मान्यता देने के लिए केन्द्रीय सरकार को सिफारिश की । बाद में, भारत सरकार ने तारीख 20 फरवरी, 2010 के आदेश द्वारा यह सूचित किया कि "अपोलो पशु-चिकित्सा आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, जयपुर द्वारा प्रदान की गई डिग्रियों को मान्यता देना संभव नहीं पाया गया है" । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा तारीख 22 फरवरी, 2010 के पत्र द्वारा रजिस्ट्रार को केन्द्रीय सरकार के विनिश्चय के बारे में सूचित किया गया । राजस्थान

राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् को भी अपने रजिस्टर से डाक्टरों के नाम हटाने के लिए कहा गया । अपोलो महाविद्यालय को और उक्त महाविद्यालय से उत्तीर्ण करने वाले छात्रों को प्रदान की गई डिग्रियों को मान्यता देने से इनकार करने वाले पूर्वोक्त आदेशों को उक्त महाविद्यालय के अनेक पूर्वछात्रों ने, जो व्यवसायरत डाक्टर हैं और जो उक्त महाविद्यालय से उत्तीर्ण हैं, तथा साथ ही उन छात्रों द्वारा जो अपोलो महाविद्यालय में पढ़ाई कर रहे हैं, चुनौती दी गई ।

5. इसी प्रकार के आदेश महात्मा गांधी महाविद्यालय को मान्यता देने से इनकार करते हुए भी किए गए । उक्त महाविद्यालय के छात्रों ने, जिनमें पूर्वछात्र भी हैं, भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम की पहली अनुसूची में तद्द्वारा महात्मा गांधी महाविद्यालय का नाम सम्मिलित करने के लिए भारत सरकार को समुचित अधिसूचना जारी करने का निदेश देने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष समावेदन किया । रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख 8 दिसम्बर, 2011 के पत्र द्वारा, अन्य बातों के साथ-साथ, महात्मा गांधी महाविद्यालय के पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक पाठ्यक्रम को मान्यता देने के लिए विचार न करने का विनिश्चय किया और इसके बारे में संबंधित प्राधिकारियों को सूचित किया । उक्त पत्र को भी उच्च न्यायालय में लंबित रिट याचिका में चुनौती दी गई ।

6. पूर्वछात्रों तथा अपोलो महाविद्यालय के छात्रों द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाओं की एकसाथ सुनवाई की गई और राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर न्यायपीठ, जयपुर द्वारा तारीख 17 नवम्बर, 2011 को एक सामान्य निर्णय द्वारा रिट याचिकाएं खारिज कर दी गईं और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद्/भारत संघ द्वारा अपोलो महाविद्यालय और उक्त महाविद्यालय से उत्तीर्ण हुए छात्रों को प्रदान की गई डिग्रियों को मान्यता देने से इनकार करने के लिए जारी किए गए आदेशों, पत्रों और अधिसूचनाओं को मान्य ठहराया । उपर्युक्त विनिश्चय का अनुसरण करते हुए, राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर न्यायपीठ, जयपुर के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 23 दिसम्बर, 2011 के निर्णय द्वारा उन छात्रों द्वारा फाइल गई रिट याचिका खारिज कर दी गई जो महात्मा गांधी महाविद्यालय से उत्तीर्ण होकर गए थे ।

7. उपर्युक्त प्रश्न का विनिश्चय करने से पूर्व, अपोलो महाविद्यालय और महात्मा गांधी महाविद्यालय से संबंधित मामले की सुसंगत तथ्यात्मक

पृष्ठभूमि पर विस्तार से विचार करना आवश्यक है ।

8. **अपोलो महाविद्यालय**

राजस्थान सरकार ने तारीख 10 अगस्त, 1998 को अपोलो पशु-चिकित्सा आयुर्विज्ञान महाविद्यालय को 50 सीटों के साथ पशु-चिकित्सा विज्ञान और पशु पालन में स्नातक पाठ्यक्रम चलाने के लिए भारत संघ/भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा अनुज्ञा प्रदान करने के अधीन रहते हुए अनापत्ति प्रमाणपत्र अनुदत्त किया ; राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय ने पशु-चिकित्सा विज्ञान और पशु पालन में प्रथम वर्ष का स्नातक पाठ्यक्रम पढ़ाने के लिए तारीख 6 नवम्बर, 2000 को संबद्धता अनुदत्त की और बाद में पश्चात्वर्ती शैक्षणिक वर्षों के लिए संबद्धता दो वर्ष की अवधि के लिए बढ़ा दी गई ।

9. भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् की निरीक्षण समिति ने समय-समय पर अपोलो महाविद्यालय का निरीक्षण किया । निरीक्षण रिपोर्ट, 2003 द्वारा समिति ने यह रिपोर्ट दी कि महाविद्यालय में सुविधाएं और कर्मचारिवृंद, भवन की कतिपय कमियों के सिवाय, पर्याप्त प्रतीत होता है क्योंकि महाविद्यालय एक किराए के भवन में खोला गया था । केन्द्रीय सरकार ने तारीख 26 सितम्बर, 2003 के पत्र द्वारा कृषि विश्वविद्यालय को सूचित किया कि अपोलो अस्पताल से अनुरोध किया जाए कि न्यूनतम अपेक्षाएं पूर्ण की जाएं । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख 13 अगस्त, 2004 को कृषि विश्वविद्यालय को सूचित किया कि परिषद् के पास उपलब्ध अभिलेख के अनुसार अपोलो महाविद्यालय मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हताएं प्रदान करने के प्रयोजन के लिए कृषि विश्वविद्यालय का एक घटक महाविद्यालय नहीं है । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख 2 फरवरी, 2005 के अपने पत्र द्वारा राजस्थान सरकार और कृषि विश्वविद्यालय को सूचित किया कि अपोलो महाविद्यालय में दाखिले रोक दिए जाएं क्योंकि इसे ऐसी मान्यता के प्रयोजन के लिए भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम की पहली अनुसूची में सम्मिलित नहीं किया गया है । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा तारीख 12 मई, 2005 और 20 मई, 2005 को इंडियन एक्सप्रेस के जयपुर प्रकाशनों और राजस्थान पत्रिका में यह सूचित करते हुए लोक सूचनाएं भी जारी की गईं कि अपोलो महाविद्यालय के छात्रों की पशु-चिकित्सा विज्ञान और पशु पालन में स्नातक की अर्हता पशु-चिकित्सा की मान्यताप्राप्त अर्हता नहीं है ।

10. उसके पश्चात् भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख 21 नवम्बर, 2005 को अपोलो महाविद्यालय में छात्रों के दाखिले के लिए अनापत्ति प्रमाणपत्र, कृषि विश्वविद्यालय द्वारा अनुदत्त संबद्धता में विस्तार के अध्यधीन रहते हुए, प्रदान किया । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा प्रदान किए गए अनापत्ति प्रमाणपत्र के अनुसरण में कृषि विश्वविद्यालय ने तारीख 26 नवम्बर, 2005 के पत्र द्वारा अपोलो महाविद्यालय को छात्रों के दाखिले के लिए अनुज्ञा प्रदान की ।

11. अपीलार्थियों के अनुसार, उन्होंने राजस्थान प्री-मेडिकल/राजस्थान प्री-वैटरीनरी (आरपीएम/आरपीवी) खुली प्रवेश परीक्षा में भाग लिया था और उन्हें पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक के लिए अपोलो महाविद्यालय आबंटित किया गया था । बाद में, भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् के निरीक्षकों द्वारा तारीख 22-24 जनवरी, 2007 को अपोलो महाविद्यालय का निरीक्षण किया गया और उन्होंने यह उल्लेख करते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत की कि अपोलो महाविद्यालय अवसंरचना आदि के संबंध में भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् के सन्नियमों का पालन कर रहा है और यहां जनशक्ति तथा उपस्करों के साथ-साथ टीवीसीसी, पशु फार्म और प्रयोगात्मक पशु सुविधाओं को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है । तथापि, भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा तारीख 10 अप्रैल, 2007 को जनसाधारण को सूचित करते हुए एक लोक सूचना जारी की गई कि अपोलो महाविद्यालय ने यह भ्रामक और गलत जानकारी प्रकाशित की है कि भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा महाविद्यालय को मान्यता प्रदान की गई है और इसलिए जनसाधारण को सूचित किया जाता है कि भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा इस महाविद्यालय की बाबत अर्हता की मान्यता के विषय पर अपेक्षा पूर्ण होने पर ही विचार किया जाएगा और परिषद् ने उक्त महाविद्यालय की पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की अर्हता को मान्यता नहीं दी है ।

12. भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् के एक अन्य दल ने तारीख 22-23 नवम्बर, 2007 को अपोलो महाविद्यालय का निरीक्षण किया और यह रिपोर्ट दी कि इसमें उल्लिखित कमियों को देखते हुए विश्वविद्यालय की अर्हता को महाविद्यालय की बाबत इस समय मान्यता देने के लिए विचार नहीं किया जाना चाहिए । तथापि, जब कृषि विश्वविद्यालय और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् के प्रतिनिधियों की बैठक हुई तो उन्होंने तारीख 2 फरवरी, 2008 की अपनी कार्यवाही में यह अभिलिखित किया कि

विश्वविद्यालय आश्वस्त है कि अपोलो महाविद्यालय के प्रथम बैच के छात्रों की बाबत भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् के विनियमों के अनुसार न्यूनतम शैक्षणिक/हाजिरी संबंधी अपेक्षाएं पूरी की गई हैं और उसके पश्चात् भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख 10 मार्च, 2008 को अपोलो महाविद्यालय के प्रथम बैच के छात्रों की बाबत, जिन्होंने पांच वर्षीय पाठ्यक्रम पूर्ण किया था, पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की डिग्री को अनंतिम मान्यता प्रदान की । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख 27 फरवरी, 2009 को कृषि विश्वविद्यालय को सूचित किया कि उसने केन्द्रीय सरकार को अपोलो महाविद्यालय के वर्ष 2004 में दाखिला लेने वाले छात्रों के द्वितीय बैच की अर्हता को मान्यता देने के लिए आवश्यक कार्यवाही करने हेतु अनुरोध किया है । इसके पश्चात् तारीख 24 जुलाई, 2009 को एक पत्र भेजा गया जिसके द्वारा भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने कृषि विश्वविद्यालय को सूचित किया कि उसने दिसम्बर, 2004 में दाखिला लेने वाले छात्रों अर्थात् छात्रों के तृतीय बैच की अर्हता को मान्यता देने के लिए भारत संघ को सिफारिश करने का विनिश्चय किया है । तारीख 24 जुलाई, 2009 को भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने भी कृषि विश्वविद्यालय को सूचित किया कि अपोलो महाविद्यालय वर्ष 2009-2010 के शैक्षणिक सत्र के लिए छात्रों का दाखिला कर सकता है । इसी बीच, कृषि विश्वविद्यालय ने तारीख 3 सितम्बर, 2009 के अपने पत्र द्वारा अपोलो महाविद्यालय को सत्र 2007-2008 और 2008-2009 के लिए संबद्धता प्रदान कर दी । तत्पश्चात्, भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ समिति (बलरामन समिति) ने तारीख 16 नवम्बर, 2009 को यह सिफारिश की कि पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक पाठ्यक्रम में 55 संकाय सदस्य पर्याप्त हैं । केन्द्रीय सरकार ने पशु पालन, डेयरी और मत्स्य पालन मंत्रालय की मार्फत तारीख 20 फरवरी, 2010 को आक्षेपित आदेश द्वारा अपोलो महाविद्यालय द्वारा दी गई डिग्रियों को मान्यता प्रदान करने से इनकार कर दिया ।

13. भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए गए तारीख 20 फरवरी, 2010 के आदेश को निर्दिष्ट करते हुए तारीख 22 फरवरी, 2010 के आदेश द्वारा रजिस्ट्रार, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय को निदेशित किया कि अब इसके पश्चात् अपोलो महाविद्यालय में पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिग्री पाठ्यक्रम में छात्रों का

दाखिला न किया जाए । तत्पश्चात् केन्द्रीय सरकार ने तारीख 22 मार्च, 2010 के पत्र द्वारा अपने पूर्ववर्ती आदेश में निम्नलिखित संशोधन जारी किया :–

1.	के स्थान पर	पढ़े
	अपोलो पशु-चिकित्सा आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, जयपुर द्वारा दी गई डिग्री को मान्यता प्रदान करना संभव नहीं पाया गया है ।	अपोलो पशु-चिकित्सा आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, जयपुर से उत्तीर्ण करने वाले छात्रों को दी गई डिग्री को मान्यता प्रदान करना संभव नहीं पाया गया है ।

14. रजिस्ट्रार, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर के ध्यान में उपुर्यक्त संशोधन भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा तारीख 20 अप्रैल, 2010 के पत्र द्वारा लाया गया । इसके बाद तारीख 29 अप्रैल, 2010 को केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचना जारी की गई जिसके द्वारा भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की धारा 15 की उपधारा (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए केन्द्रीय सरकार ने उक्त अधिनियम की पहली अनुसूची को निम्नलिखित रीति में संशोधित किया :–

"उक्त अधिनियम की पहली अनुसूची में 'डिग्रियों' उप-शीर्षक के अधीन,–

(i) राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय से संबंधित क्रम संख्यांक 33 के सामने, कॉलम 3 में, 'पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन स्नातक' अक्षरों के अधीन निम्नलिखित शब्द, अंक और अक्षर जोड़े जाएंगे –

यह अर्हता केवल तब यथापूर्वोक्त मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता होगी जब तारीख 10 सितम्बर, 2009 या इससे पूर्व प्रदान की गई हो ।

(ii) क्रम संख्यांक 73 और इससे संबंधित प्रविष्टियों के पश्चात्, निम्नलिखित क्रम संख्यांक और प्रविष्टियां जोड़े जाएंगे, अर्थात् –

1.	2.	3.
74. पशु-चिकित्सा और पशु विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर की बाबत स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर	पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक	पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक (यह अर्हता यथापूर्वोक्त अर्हता केवल तब होगी जब तारीख 11 सितम्बर, 2009 या इसके पश्चात् प्रदान की गई हो) ।"

आक्षेपित आदेशों और अधिसूचनाओं के जारी होने के पश्चात् घटित उद्घटनाएं :

15. स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर और महाराणा प्रताप कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर की पशु-चिकित्सा और पशु विज्ञान प्रभाग की इकाइयों की कांट-छांट करके तारीख 13 मई, 2010 को राजस्थान पशु-चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय अस्तित्व में आया । रजिस्ट्रार, राजस्थान पशु-चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर ने तारीख 19 अगस्त, 2010 के पत्र द्वारा अपोलो महाविद्यालय में छात्रों के दाखिलों को निर्दिष्ट करते हुए सचिव, पशु पालन, डेयरी और मत्स्य पालन, भारत सरकार, नई दिल्ली को यह सूचित किया कि विश्वविद्यालय ने तारीख 27 जुलाई, 2010 को अपोलो महाविद्यालय का अस्तित्व निरीक्षण किया और निरीक्षण के आधार पर विश्वविद्यालय ने वर्ष 2010-2011 के लिए संबद्धता और सत्र 2009-2010 के लिए कार्योत्तर संबद्धता प्रदान की है । यह भी सूचित किया गया कि निरीक्षण दल की रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि अपोलो महाविद्यालय में छात्रों के प्रशिक्षण के लिए सुविधाएं भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् के सन्नियमों के अनुसार पर्याप्त हैं और प्राधिकारियों से तारीख 20 फरवरी, 2010 के पूर्ववर्ती आदेश का पुनर्विलोकन करने और अपीलार्थी को भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की पहली अनुसूची में सम्मिलित करने का अनुरोध किया जाता है ।

16. भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् के श्री एन. के. भट्टाचार्य के नेतृत्व में एक दल ने तारीख 22 नवम्बर, 2010 और 24 नवम्बर, 2010 के बीच अपोलो महाविद्यालय का पुनःनिरीक्षण किया । भट्टाचार्य समिति ने अपनी रिपोर्ट द्वारा यह सूचित किया कि पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिग्री पाठ्यक्रम के सैद्धांतिक और प्रायोगिक शिक्षण के

लिए सभी शिक्षण शाखाओं में समग्र सुविधाएं समाधानप्रद पाई गई हैं तथा भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् विनियम, 2008 के अनुसार उक्त पाठ्यक्रम चलाने के लिए न्यूनतम मानक बनाए रखने के लिए पर्याप्त हैं ।

17. केन्द्रीय सरकार द्वारा तारीख 31 जनवरी, 2011 के पत्र द्वारा राजस्थान पशु-चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय को सूचित किया गया कि भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा तारीख 22 से 24 नवम्बर, 2010 के दौरान अपोलो महाविद्यालय का निरीक्षण किया गया था और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् से सिफारिश प्रतीक्षित है । केन्द्रीय सरकार द्वारा तारीख 24 मार्च, 2011 को भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् को तारीख 22 और 24 नवम्बर, 2010 के बीच किए गए निरीक्षण को ध्यान में रखते हुए अपनी सिफारिश भेजने का अनुरोध किया गया । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख 29 मार्च, 2011 के पत्र द्वारा राजस्थान राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् को सूचित किया कि उसने केन्द्रीय सरकार को राज्य विश्वविद्यालय द्वारा अपोलो महाविद्यालय के छात्रों को दी गई डिग्रियों की मान्यता के लिए सिफारिश की थी किंतु केन्द्रीय सरकार द्वारा अभी तक अधिसूचना जारी नहीं की गई है । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् की कार्यपालक समिति ने तारीख 30 मार्च, 2011 को अपोलो महाविद्यालय की शैक्षणिक वर्ष 2009 तक दाखिल किए गए पहले तीन बैचों की अर्हता की मान्यता के लिए केन्द्रीय सरकार को सिफारिश करने का विनिश्चय किया । केन्द्रीय सरकार ने तारीख 6 जुलाई, 2011 के पत्र द्वारा भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् को निरीक्षण दल द्वारा बताई गई कमियों को ध्यान में रखते हुए अपोलो महाविद्यालय की मान्यता के मामले का पुनर्विलोकन करने का अनुरोध किया । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् की कार्यपालक समिति ने अपोलो महाविद्यालय की बाबत अर्हता की मान्यता के लिए प्रस्ताव पर विचार किया और तारीख 11 जुलाई, 2011 के पत्र द्वारा केन्द्रीय सरकार को अर्हता की मान्यता के लिए सिफारिश की ।

18. **महात्मा गांधी महाविद्यालय**

पशु पालन विभाग, राजस्थान सरकार ने तारीख 24 मई, 2005 को श्रीमती उर्मिला देवी मंगैया प्रोपकारी ट्रस्ट को पशु-चिकित्सा महाविद्यालय खोलने के लिए अनापत्ति प्रमाणपत्र प्रदान किया था । राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर ने तारीख 28 जून, 2005 को महाविद्यालय को सशर्त संबद्ध किया और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद,/भारत सरकार से अनुज्ञा प्राप्त होने पर दाखिला शुरू करने के लिए अनुज्ञात किया । भारतीय

पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख 9 नवम्बर, 2005 को पशु-चिकित्सा महाविद्यालय खोलने के लिए अनापत्ति जारी की ।

19. राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर ने तारीख 26 नवम्बर, 2005 को महाविद्यालय में दाखिले मंजूर करने के लिए अधिसूचना जारी की । इस बीच विश्वविद्यालय द्वारा समय-समय पर संबद्धता में विस्तार किया गया । राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख 12 अक्तूबर, 2010 को भारत सरकार को राजस्थान पशु-चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर से भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम की धारा 15(2) के अनुसार संबद्ध महात्मा गांधी पशु-चिकित्सा महाविद्यालय, भरतपुर द्वारा पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की मान्यता के बारे में सूचित किया ।

20. भारत सरकार को तारीख 26 अक्तूबर, 2010 को एक स्मरण-पत्र जारी किया गया । सचिव, भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख 4 फरवरी, 2011 को महात्मा गांधी पशु-चिकित्सा महाविद्यालय, भरतपुर द्वारा चलाए गए पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक पाठ्यक्रम की मान्यता के लिए सिफारिश की और यह सूचित किया गया कि भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् महाविद्यालय को मान्यता देती है । सचिव, भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख 29 मार्च, 2011 को रजिस्ट्रार, राजस्थान राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् को सूचित किया कि यद्यपि परिषद् ने केन्द्रीय सरकार को महात्मा गांधी पशु-चिकित्सा महाविद्यालय, भरतपुर की बाबत अर्हता की मान्यता के लिए सिफारिश की है और दो महाविद्यालयों अर्थात् अपोलो पशु-चिकित्सा आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, जयपुर तथा महात्मा गांधी पशु-चिकित्सा महाविद्यालय, भरतपुर को पहली अनुसूची में सम्मिलित करते हुए अधिसूचना अभी केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी की जानी है ।

21. राजस्थान सरकार ने अप्रैल, 2011 में विधान सभा में महात्मा गांधी पशु-चिकित्सा महाविद्यालय, भरतपुर का नाम मान्यताप्राप्त महाविद्यालय के रूप में अधिसूचित करने के लिए प्रस्ताव रखा । तारीख 28 अप्रैल, 2011 को सचिव, पशु-चिकित्सा ने सचिव, पशु पालन, डेयरी और मत्स्य पालन विभाग को सूचित किया कि महात्मा गांधी पशु-चिकित्सा परिषद्, भरतपुर ने शेष कमियों को पूरा कर लिया है । अपीलार्थियों में से कुछ द्वारा स्थायी पंजीकरण प्रमाणपत्र जारी करने और उन्हें राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा जारी किए गए विज्ञापन के अनुसरण में पशु-चिकित्सा अधिकारी के पद पर नियुक्ति के लिए चयन प्रक्रिया में भाग लेने हेतु

अनुज्ञात करने के लिए प्रत्यर्थियों को निदेश देने के लिए राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष 2011 की रिट याचिका फाइल की गई । उच्च न्यायालय द्वारा राज्य में नियुक्ति के लिए लिखित परीक्षा में बैठने के लिए अनुज्ञात करते हुए तारीख 30 मई, 2011 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया ।

22. भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने महात्मा गांधी पशु-चिकित्सा महाविद्यालय, भरतपुर द्वारा प्रस्तुत किए गए पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक पाठ्यक्रम की मान्यता के लिए सिफारिश न करने का विनिश्चय करते हुए तारीख 8 दिसम्बर, 2011 को पत्र जारी किया, क्योंकि महाविद्यालय पशु-चिकित्सा के डिग्री पाठ्यक्रम के न्यूनतम मानक को पूर्ण नहीं करता है । उच्च न्यायालय ने तारीख 23 दिसम्बर, 2011 को 2011 की रिट याचिका सं. 4690 अपोलो महाविद्यालय वाले मामले में खंड न्यायपीठ के तारीख 17 नवम्बर, 2011 के निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए खारिज कर दी ।

23. इन अपीलों में अंतर्वलित प्रश्न निम्नलिखित हैं :–

(i) क्या किसी 'पशु-चिकित्सा महाविद्यालय' के लिए पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक पाठ्यक्रम पढ़ाने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की पहली अनुसूची के अधीन मान्यता दिया जाना आज्ञापक है ; और

(ii) ऐसे छात्रों के मामले में क्या संभव विधिक हल होना चाहिए जो पहले ही महाविद्यालयों से उत्तीर्ण होकर गए हैं, यह स्पष्ट प्रश्न नहीं है ।

24. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए गए आदेशों और अधिसूचनाओं के साथ-साथ आक्षेपित निर्णय को निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी है :–

(i) राज्य में किसी पशु-चिकित्सा महाविद्यालय या संस्थान को मान्यता देने में केन्द्रीय सरकार की कोई भूमिका नहीं है ।

(ii) भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की धारा 21(4) में किसी महाविद्यालय से संबंधित चिकित्सा डिग्री की मान्यता वापस लेने या मान्यता देने का कोई उल्लेख नहीं है । जब एक बार

किसी विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई डिग्री को मान्यता दे दी जाती है तो महाविद्यालय की मान्यता का कोई प्रश्न नहीं है ।

(iii) केन्द्रीय सरकार या परिषद् का नियंत्रण सभी संगठन में एक समान नहीं है । उदाहरण के लिए, भारतीय चिकित्सा परिषद् का चिकित्सा महाविद्यालयों पर नियंत्रण भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् का पशु-चिकित्सा महाविद्यालयों पर नियंत्रण से भिन्न है ।

25. दूसरी ओर, भारत के महासालिसिटर के अनुसार, भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की धारा 21(4) में केन्द्रीय सरकार को किसी महाविद्यालय द्वारा दी गई किसी डिग्री को मान्यता देने या मान्यता वापस लेने के लिए सशक्त किया गया है । पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की शिक्षा देने वाले महाविद्यालय के लिए यह आज्ञापक है कि केन्द्रीय सरकार से भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की पहली अनुसूची के अधीन मान्यता प्राप्त करे और ऐसे महाविद्यालयों से उत्तीर्ण करने वाले छात्रों को राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् के पास अपने को रजिस्ट्रीकृत कराने की अनुज्ञा नहीं होगी ।

26. इन अपीलों में अंतर्वलित मुख्य विवाद्यक का अवधारण करने के लिए भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 के सुसंगत उपबंधों, तद्धीन बनाए गए नियमों और विनियमों तथा संबंधित सुसंगत तथ्यों को निर्दिष्ट करना वांछनीय है ।

27. उक्त अधिनियम पशु-चिकित्सा व्यवसाय को नियंत्रित और विनियमित करने तथा उस प्रयोजन के लिए एक भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् और राज्य पशु-चिकित्सा परिषदों की स्थापना के लिए उपबंध करने तथा पशु-चिकित्सा व्यवसायियों के रजिस्टर बनाए रखने के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था ।

मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता और संस्थान

28. धारा 2 (ङ) में "मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता" को परिभाषित किया गया है, जो निम्नलिखित रूप में है :–

"'मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता' से अभिप्रेत पहली अनुसूची या दूसरी अनुसूची में सम्मिलित पशु-चिकित्सा अर्हता है ।"

29. जबकि धारा 2 (ञ) में "पशु-चिकित्सा संस्था" को परिभाषित किया गया है, जो निम्नलिखित रूप में है :–

"'पशु-चिकित्सा संस्था' से भारत में या भारत के बाहर ऐसा कोई विश्वविद्यालय या अन्य संस्था अभिप्रेत है जो पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में डिग्रियां, डिप्लोमें या अनुज्ञप्तियां अनुदत्त करता है ।"

30. राजस्थान पशु-चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में डिग्रियां अनुदत्त करता है और धारा 2(ञ) – 'पशु-चिकित्सा संस्था' के अर्थांतर्गत आता है ।

31. अपोलो महाविद्यालय और महात्मा गांधी महाविद्यालय पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में शिक्षा देता है । ये दोनों महाविद्यालय कोई डिग्री अनुदत्त नहीं करते हैं और तद्द्वारा उपर्युक्त महाविद्यालय धारा 2(ञ) – 'पशु-चिकित्सा संस्था' के अर्थांतर्गत नहीं आते हैं ।

32. अधिनियम की धारा 15 भारत में पशु-चिकित्सा संस्थाओं (विश्वविद्यालयों) द्वारा अनुदत्त 'पशु-चिकित्सा अर्हताओं' की मान्यता के संबंध में है, जिसे इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"15. भारत में पशु-चिकित्सा संस्थाओं द्वारा अनुदत्त पशु-चिकित्सा अर्हताओं की मान्यता – (1) भारत की किसी पशु-चिकित्सा संस्था द्वारा अनुदत्त ऐसी पशु-चिकित्सा अर्हताएं जो पहली अनुसूची में सम्मिलित हैं इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हताएं होंगी ।

(2) भारत में की कोई पशु-चिकित्सा संस्था, जो ऐसी पशु-चिकित्सा अर्हता अनुदत्त करती है पहली अनुसूची में सम्मिलित नहीं है, ऐसी अर्हता को मान्यताप्राप्त कराने के लिए केन्द्रीय सरकार को आवेदन कर सकेगी और केन्द्रीय सरकार परिषद् से परामर्श करने के पश्चात्, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, पहली अनुसूची में संशोधन कर सकेगी, जिससे ऐसी अर्हता को उसमें सम्मिलित किया जा सके और ऐसी किसी अधिसूचना में यह निदेश भी दिया जा सकेगा कि पहली अनुसूची के अंतिम स्तंभ में ऐसी पशु-चिकित्सा अर्हता के सामने यह घोषणा करने वाली प्रविष्टि की जाएगी कि यह मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता केवल तब होगी जब उसे विनिर्दिष्ट तारीख के पश्चात् अनुदत्त किया जाए ।"

उपरोक्त उपबंध से यह स्पष्ट होता है कि अधिनियम के अधिनियमित होने की तारीख से ही, भारत में पशु-चिकित्सा संस्थाओं (विश्वविद्यालयों) द्वारा

अनुदत्त केवल ऐसी पशु-चिकित्सा अर्हताएं, जो पहली अनुसूची में सम्मिलित हैं, अधिनियम के प्रयोजनों के लिए मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हताएं हैं । किसी अन्य पशु-चिकित्सा अर्हता को सम्मिलित करने के लिए, भारत में पशु-चिकित्सा संस्था (विश्वविद्यालय) के लिए यह अपेक्षित है कि वह केन्द्रीय सरकार को ऐसी अर्हता की मान्यता के लिए अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन आवेदन करे । ऐसी स्थिति में, केन्द्रीय सरकार भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् से परामर्श करके, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, पहली अनुसूची में संशोधन कर सकेगी जिससे ऐसी अर्हता को उसमें सम्मिलित किया जा सके ।

33. धारा 2 (ङ), 2(ञ) और धारा 15 के संयुक्त वाचन से यह स्पष्ट होता है कि यदि भारत में पशु-चिकित्सा संस्था (विश्वविद्यालय) द्वारा, चाहे सीधे तौर पर स्वयं द्वारा या किसी मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा महाविद्यालय द्वारा पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की डिग्री, डिप्लोमा या अनुज्ञप्ति अनुदत्त किए जाते हैं, तो ऐसी पशु-चिकित्सा अर्हता की मान्यता आज्ञापक है ।

34. **"पशु-चिकित्सा महाविद्यालय" और "मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा महाविद्यालय"**

'पशु-चिकित्सा महाविद्यालय' को भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद्-पशु-चिकित्सा डिग्री पाठ्यक्रम (पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक) विनियम, 2008 (जिसे इसमें इसके पश्चात् विनियम, 2008 कहा गया है) की धारा 2(ण) में परिभाषित किया गया है और यह निम्नलिखित रूप में है :–

> *"'पशु-चिकित्सा महाविद्यालय' से ऐसी संस्था अभिप्रेत है जो पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिग्री देने के लिए पशु-चिकित्सा शिक्षा दे रही है और उसके पास संकायाध्यक्ष/प्रधानाचार्य के संपूर्ण प्रशासनिक नियंत्रणाधीन इन विनियमों में यथा अधिकथित अपेक्षित संख्या में विभाग/इकाई, अवसंरचना, जनशक्ति और अन्य सुविधाएं हैं ।"

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"'Veterinary College' means an institution imparting veterinary education for the award of B.V.Sc. & A.H. degree having the required number of department/units, infrastructure, manpower and other facilities as laid down in these Regulations under the overall administrative control of the Dean/Principal."

'भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् (रजिस्ट्रीकरण) विनियम, 1992' (जिसे इसमें इसके पश्चात् विनियम, 1992 कहा गया है) की धारा 2(ग) में "मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा महाविद्यालय" को परिभाषित किया गया है और यह निम्नलिखित रूप में है :–

> *"'मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा महाविद्यालय' से किसी विश्वविद्यालय से संबद्ध और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा मान्यताप्राप्त कोई पशु-चिकित्सा महाविद्यालय अभिप्रेत है ।"

इस प्रकार, पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिग्री देने के लिए शिक्षा दे रहे केवल वे महाविद्यालय मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा महाविद्यालय कहे जा सकते हैं, जिनके पास विनियम, 2008 के अनुसार अपेक्षित संख्या में विभाग/इकाई, अवसंरचना, जनशक्ति और अन्य सुविधाएं हैं और किसी पशु-चिकित्सा संस्था (विश्वविद्यालय) से संबद्ध और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा मान्यताप्राप्त हैं ।

35. **विश्वविद्यालय, महाविद्यालय/संस्था का निरीक्षण**

अधिनियम की धारा 29 निम्नलिखित है :–

> "19. पशु-चिकित्सा संस्थाओं का निरीक्षण और परीक्षाएं – (1) धारा 12 के अधीन गठित समिति, परिषद् द्वारा बनाए गए विनियमों के, यदि कोई हों, के अधीन रहते हुए किसी पशु-चिकित्सा संस्था या किसी महाविद्यालय या अन्य संस्था के, जहां पशु-चिकित्सा की शिक्षा दी जाती है, निरीक्षण के लिए या उस पशु-चिकित्सा संस्था द्वारा ली जाने वाली किसी परीक्षा में उपस्थित रहने के लिए किसी पशु-चिकित्सा संस्था द्वारा अनुदत्त की जाने वाली पशु-चिकित्सा अर्हताओं की मान्यता के लिए केन्द्रीय सरकार से सिफारिश करने के प्रयोजन से उतनी संख्या में, जितनी वह अपेक्षित समझे, पशु-चिकित्सा निरीक्षक नियुक्त कर सकेगी ।
>
> (2) पशु-चिकित्सा निरीक्षक किसी प्रशिक्षण या परीक्षा के संचालन में हस्तक्षेप नहीं करेंगे किंतु पशु-चिकित्सा के स्तरों की, जिनके

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

> 'Recognised Veterinary College' means a Veterinary College affiliated to a University and recognized by Veterinary Council of India."

अंतर्गत कर्मचारिवृंद, उपस्कर, वास-सुविधा, प्रशिक्षण तथा पशु-चिकित्सा देने के लिए विनियमों द्वारा विहित अन्य सुविधाएं भी हैं, पर्याप्तता पर अथवा प्रत्येक परीक्षा की, जिसमें वे उपस्थित रहें, पर्याप्तता पर समिति को रिपोर्ट देंगे ।

(3) समिति ऐसी किसी रिपोर्ट की प्रति संबंधित पशु-चिकित्सा संस्था को भेजेगी और उस पर उक्त संस्था के टिप्पणों सहित, यदि कोई हों, की प्रति केन्द्रीय सरकार को भी भेजेगी ।"

अधिनियम की धारा 19 की उपधारा (1) से यह स्पष्ट है कि धारा 12 के अधीन परिषद् द्वारा गठित समिति न केवल पशु-चिकित्सा संस्था (विश्वविद्यालय) का अपितु ऐसे महाविद्यालय और अन्य संस्थाओं, जहां पशु-चिकित्सा की शिक्षा दी जाती है, के भी निरीक्षण के लिए उस पशु-चिकित्सा संस्था (विश्वविद्यालय) द्वारा अनुदत्त पशु-चिकित्सा अर्हता की मान्यता के लिए केन्द्रीय सरकार से सिफारिश करने के प्रयोजन के लिए निरीक्षक नियुक्त कर सकती है । इसलिए वह महाविद्यालय और संस्था भी, जिसके माध्यम से पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिग्री दी जाती है, पशु-चिकित्सा संस्था (विश्वविद्यालय) द्वारा अनुदत्त पशु-चिकित्सा अर्हता की मान्यता के प्रयोजन के लिए अधिनियम की परिधि के अंतर्गत आते हैं ।

36. अधिनियम की धारा 21 निम्नलिखित है :–

"21. मान्यता का वापस लिया जाना – (1) जब समिति या परिदर्शक की रिपोर्ट पर परिषद् को यह प्रतीत होता है कि –

(क) किसी पशु-चिकित्सा संस्था में पूरे किए जाने वाले पाठ्यक्रम और ली जाने वाली परीक्षा या उसके द्वारा ली गई परीक्षा में अभ्यर्थियों से अपेक्षित प्रवीणता इस अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों के अनुरूप नहीं है या उसके द्वारा अपेक्षित स्तर के नीचे की है, या

(ख) ऐसे पशु-चिकित्सा संस्था या उससे संबद्ध किसी महाविद्यालय या अन्य संस्था में कर्मचारिवृंद, उपस्कर, वास-सुविधा, प्रशिक्षण और शिक्षण तथा प्रशिक्षण की अन्य सुविधाएं, परिषद् द्वारा विहित स्तर के अनुरूप नहीं हैं,

तो परिषद् उस आशय का अभ्यावेदन केन्द्रीय सरकार को करेगी ।

(2) ऐसे अभ्यावेदन पर विचार करने के पश्चात्, केन्द्रीय सरकार उसे राज्य की राज्य सरकार को भेज सकेगी जिसमें वह पशु-चिकित्सा संस्था स्थित है और वह राज्य सरकार उसे ऐसे टिप्पणों सहित जो वह करे उस पशु-चिकित्सा संस्था को, उस कालावधि की प्रज्ञापना सहित जिसके भीतर वह संस्था राज्य सरकार को अपना स्पष्टीकरण दे सकेगी, भेजेगी ।

(3) स्पष्टीकरण की प्राप्ति पर या जहां नियत कालावधि के भीतर कोई स्पष्टीकरण न दिया जाए वहां उस कालावधि के अवसान पर, राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार से अपनी सिफारिश करेगा ।

(4) केन्द्रीय सरकार, ऐसी जांच करने के पश्चात्, यदि कोई हो, जो वह ठीक समझे, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकेगी कि समुचित अनुसूची में उक्त पशु-चिकित्सा अर्हता के संबंध में ऐसी प्रविष्टि की जाए जो यह घोषित करे कि यथास्थिति, वह मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता तब ही होगी, जब वह निर्दिष्ट तारीख से पूर्व अनुदत्त की जाए अथवा यह कि यदि उक्त पशु-चिकित्सा अर्हता किसी पशु-चिकित्सा संस्था से संबद्ध किसी विनिर्दिष्ट महाविद्यालय या संस्था के विद्यार्थियों को अनुदत्त की जाए, तो वह मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता तब ही होगी जब वह विनिर्दिष्ट तारीख से पूर्व अनुदत्त की जाए, या यह कि उक्त पशु-चिकित्सा अर्हता किसी पशु-चिकित्सा संस्था से संबद्ध विनिर्दिष्ट महाविद्यालय या संस्था के संबंध में मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता तब ही होगी जब वह विनिर्दिष्ट तारीख के पश्चात् अनुदत की जाए :

परंतु यह कि ऐसी अधिसूचना जारी करने से पूर्व केन्द्रीय सरकार भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् से परामर्श करेगी ।"

37. उक्त धारा के अनुसार, मान्यता निम्नलिखित परिस्थितियों में वापस ली जा सकती है :–

(i) यदि किसी पशु-चिकित्सा संस्था में पूरे किए जाने वाले पाठ्यक्रम और ली जाने वाली परीक्षा या उसके द्वारा ली गई परीक्षा में अभ्यर्थियों से अपेक्षित प्रवीणता इस अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों के अनुरूप नहीं है या उसके द्वारा अपेक्षित स्तर के नीचे की है, या

(ii) यदि ऐसे पशु-चिकित्सा संस्था या उससे संबद्ध किसी

महाविद्यालय या अन्य संस्था में कर्मचारिवृंद, उपस्कर, वास-सुविधा, प्रशिक्षण और शिक्षण तथा प्रशिक्षण की अन्य सुविधाएं, परिषद् द्वारा विहित स्तर के अनुरूप नहीं है ।

उपर्युक्त परिस्थितियों में, पशु-चिकित्सा परिषद् इस आशय का अभ्यावेदन केन्द्रीय सरकार को कर सकेगी और केन्द्रीय सरकार धारा 21 के अधीन विहित प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात्, जिसमें जांच भी सम्मिलित है, धारा 21 की उपधारा (4) के अधीन यह निदेश देते हुए राजपत्र में अधिसूचना जारी करने के लिए सशक्त है कि समुचित अनुसूची में उक्त पशु-चिकित्सा अर्हता के संबंध में ऐसी प्रविष्टि की जाए जो यह घोषित करे कि वह मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता तब ही होगी जब वह किसी विनिर्दिष्ट तारीख से पूर्व अनुदत्त की जाए अथवा यह कि यदि उक्त पशु-चिकित्सा अर्हता किसी पशु-चिकित्सा संस्था से संबद्ध किसी विनिर्दिष्ट महाविद्यालय या संस्था के छात्रों को अनुदत्त की जाए, तो वह मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता, यथास्थिति, तब ही होगी जब वह विनिर्दिष्ट तारीख से पूर्व अनुदत्त की जाए या यह कि उक्त पशु-चिकित्सा अर्हता किसी पशु-चिकित्सा संस्था से संबद्ध विनिर्दिष्ट महाविद्यालय या संस्था के संबंध में मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा तब ही होगी जब वह विनिर्दिष्ट तारीख के पश्चात् अनुदत्त की जाए ।

38. यद्यपि धारा 21 के शीर्षक से 'मान्यता का वापस लिया जाना' दर्शित होता है और कोई भी यह कह सकता है कि यह बात विनिर्दिष्ट नहीं है कि पशु-चिकित्सा संस्था से संबद्ध महाविद्यालय या संस्था को केन्द्रीय सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त किया जाना चाहिए, किंतु धारा 21 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 15 में केन्द्रीय सरकार को समुचित अनुसूची (पहली अनुसूची) में यह घोषित करते हुए प्रविष्टि करने के लिए सशक्त किया गया है कि किसी पशु-चिकित्सा संस्था (विश्वविद्यालय) से संबद्ध किसी विनिर्दिष्ट महाविद्यालय या संस्था के छात्रों को अनुदत्त की गई पशु-चिकित्सा अर्हता तब ही मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता होगी जब वह किसी विनिर्दिष्ट तारीख से पूर्व अनुदत्त की जाए अथवा यह कि उक्त पशु-चिकित्सा अर्हता विश्वविद्यालय से संबद्ध उक्त महाविद्यालय या संस्था के संबंध में मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता तब ही होगी जब वह किसी विनिर्दिष्ट तारीख के पश्चात् अनुदत्त की जाए ।

39. धारा 21 को इसके पार्श्व टिप्पण (शीर्षक) 'मान्यता का वापस लिया जाना' की बात को विचार में लाए बिना पूर्णतम अर्थ लगाया जाना

चाहिए । पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम के उद्देश्य के कथन और प्रस्तावना की धारा 2(ङ), 2(ञ), धारा 15, 19 और 21 के साथ अर्थपूर्ण वाचन करने तथा विनियम, 1992 के विनियम 2(ग) के साथ पठित विनियम, 2008 के विनियम 2(ण) का उद्देश्यपरक अर्थान्वयन करने पर यह स्पष्ट है कि केवल वही पशु-चिकित्सा महाविद्यालय, जो पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन की शिक्षा दे रहा है और जिसके माध्यम से विश्वविद्यालय द्वारा डिग्री दी जाती है और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा मान्यताप्राप्त है और पहली अनुसूची में दर्शाया गया है, पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक के पाठ्यक्रम की शिक्षा देने के लिए पात्र है ।

40. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों ने समरूपता दर्शित करने के लिए भारतीय चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1956 को निर्दिष्ट किया । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की धारा 15 जो 'भारत में पशु-चिकित्सा संस्थाओं द्वारा अनुदत्त पशु-चिकित्सा अर्हताओं की मान्यता' के संबंध में है, भारतीय चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1956 की धारा 11 के समरूप है, जो निम्नलिखित रूप में है :–

> "19. भारत में विश्वविद्यालयों या चिकित्सा संस्थाओं द्वारा अनुदत्त चिकित्सा अर्हताओं की मान्यता – (1) भारत में किसी विश्वविद्यालय या चिकित्सा संस्था द्वारा अनुदत्त ऐसी चिकित्सा अर्हताएं जो पहली अनुसूची में सम्मिलित हैं, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए मान्यताप्राप्त चिकित्सा अर्हताएं होंगी ।
>
> (2) भारत में का कोई विश्वविद्यालय या चिकित्सा संस्था, जो ऐसी चिकित्सा अर्हता अनुदत्त करती है, पहली अनुसूची में सम्मिलित नहीं है, तो ऐसी अर्हता को मान्यताप्राप्त कराने के लिए केन्द्रीय सरकार को आवेदन कर सकेगी और केन्द्रीय सरकार परिषद् से परामर्श करने के पश्चात्, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, पहली अनुसूची में संशोधन कर सकेगी, जिससे ऐसी अर्हता को उसमें सम्मिलित किया जा सके और ऐसी किसी अधिसूचना में यह निदेश भी दिया जा सकेगा कि पहली अनुसूची के अंतिम स्तंभ में ऐसी चिकित्सा अर्हता के सामने यह घोषणा करने वाली प्रविष्टि की जाएगी कि यह मान्यताप्राप्त चिकित्सा अर्हता केवल तब होगी जब उसे विनिर्दिष्ट तारीख के पश्चात् अनुदत्त किया जाए ।"

41. इसी प्रकार, भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की

धारा 21 – 'मान्यता का वापस लिया जाना' भारतीय चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1956 की धारा 19 के समरूप है, जो नीचे उद्धृत की जाती है :–

"19. मान्यता का वापस लिया जाना – (1) जब समिति या परिदर्शक की रिपोर्ट पर परिषद् को यह प्रतीत होता है कि –

(क) किसी विश्वविद्यालय या चिकित्सा संस्था में पूरे किए जाने वाले पाठ्यक्रम और ली जाने वाली परीक्षा या उसके द्वारा ली गई परीक्षा में अभ्यर्थियों से अपेक्षित प्रवीणता इस अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों के अनुरूप नहीं है या उसके द्वारा अपेक्षित स्तर के नीचे की है, या

(ख) ऐसे विश्वविद्यालय या चिकित्सा संस्था या उससे संबद्ध किसी महाविद्यालय या अन्य संस्था में कर्मचारिवृंद, उपस्कर, वास-सुविधा, प्रशिक्षण और शिक्षण तथा प्रशिक्षण की अन्य सुविधाएं, परिषद् द्वारा विहित स्तर के अनुरूप नहीं हैं,

तो परिषद् उस आशय का अभ्यावेदन केन्द्रीय सरकार को करेगी ।

(2) ऐसे अभ्यावेदन पर विचार करने के पश्चात्, केन्द्रीय सरकार उसे राज्य की राज्य सरकार को भेज सकेगी जिसमें वह विश्वविद्यालय या चिकित्सा संस्था स्थित है और वह राज्य सरकार उसे ऐसे टिप्पणों सहित जो वह करे, उस विश्वविद्यालय या चिकित्सा संस्था को, उस कालावधि की प्रज्ञापना सहित जिसके भीतर वह संस्था राज्य सरकार को अपना स्पष्टीकरण दे सकेगी, भेजेगी ।

(3) स्पष्टीकरण की प्राप्ति पर या जहां नियत कालावधि के भीतर कोई स्पष्टीकरण न दिया जाए वहां उस कालावधि के अवसान पर, राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार से अपनी सिफारिश करेगा ।

(4) केन्द्रीय सरकार, ऐसी जांच करने के पश्चात्, यदि कोई हो, जो वह ठीक समझे, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकेगी कि समुचित अनुसूची में उक्त चिकित्सा अर्हता के संबंध में ऐसी प्रविष्टि की जाए जो यह घोषित करे कि वह मान्यताप्राप्त चिकित्सा अर्हता तब ही होगी, जब वह निर्दिष्ट तारीख से पूर्व अनुदत्त की जाए अथवा यह कि यदि उक्त चिकित्सा अर्हता किसी विश्वविद्यालय से संबद्ध किसी विनिर्दिष्ट महाविद्यालय या संस्था के विद्यार्थियों को अनुदत्त की जाए, तो वह मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता तब ही

होगी जब वह विनिर्दिष्ट तारीख से पूर्व अनुदत्त की जाए, या यथास्थिति, यह कि उक्त चिकित्सा अर्हता किसी विश्वविद्यालय से संबद्ध विनिर्दिष्ट महाविद्यालय या संस्था के संबंध में मान्यताप्राप्त चिकित्सा अर्हता तब ही होगी जब वह विनिर्दिष्ट तारीख के पश्चात् अनुदत्त की जाए ।"

42. भारतीय चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1956 के उपर्युक्त उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए, जब केन्द्रीय सरकार ने पहली अनुसूची को अधिसूचित किया, तो मान्यताप्राप्त महाविद्यालयों के साथ-साथ महाविद्यालयों को संबद्ध करने वाले विश्वविद्यालयों दोनों के नाम उन अर्हताओं के साथ जो मान्यताप्राप्त हैं इस अनुसूची में दर्शाए गए हैं । भारतीय चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1956 की पहली अनुसूची के सुसंगत उद्धरण से यह स्पष्ट है, जिसे नीचे उद्धृत किया जाता है :–

क्र. सं.	पाठ्यक्रम	राज्य	चिकित्सा महाविद्यालय/ संस्था का नाम	विश्व-विद्यालय का नाम	महा-विद्यालय का प्रबंधन	महा-विद्यालय आरंभ होने का वर्ष	वार्षिक सीटों की सं.	भारतीय चिकित्सा परिषद् की मान्यता की प्रास्थिति
1.	एनेसथेसिया में डिप्लोमा	राजस्थान	आर. एन. टी. चिकित्सा महाविद्यालय, उदयपुर	राजस्थान चिकित्सा विज्ञान विश्व-विद्यालय	राजकीय	1961	6	वर्ष 1981 को या पश्चात् से जब मान्यता अनुदत्त की गई
2.	एनेसथेसिया में डिप्लोमा	राजस्थान	सरदार पटेल चिकित्सा महाविद्यालय, बीकानेर	राजस्थान चिकित्सा विज्ञान विश्व-विद्यालय	राजकीय	1959	6	जुलाई, 1968 को या पश्चात् से जब मान्यता अनुदत्त की गई
3.	एनेसथेसिया में डिप्लोमा	राजस्थान	एस. एम. एस. चिकित्सा महाविद्यालय, जयपुर	राजस्थान चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्या लय	राजकीय	1947	6	मान्यताप्राप्त
4.	बाल-चिकित्सा में डिप्लोमा	राजस्थान	आर. एन. टी. चिकित्सा महाविद्यालय, उदयपुर	राजस्थान चिकित्सा विज्ञान विश्व-विद्यालय	राजकीय	1961	3	दिसम्बर, 1981 को या पश्चात् से जब मान्यता अनुदत्त की गई
5.	बाल-चिकित्सा में डिप्लोमा	राजस्थान	सरदार पटेल चिकित्सा महाविद्यालय, बीकानेर	राजस्थान चिकित्सा विज्ञान विश्व-विद्यालय	राजकीय	1959	6	अप्रैल, 1969 को या पश्चात् से जब मान्यता अनुदत्त की गई

43. अतः, ऊपर चर्चा किए गए उपबंधों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात्, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक के पाठ्यक्रम की शिक्षा देने वाले किसी 'पशु-चिकित्सा महाविद्यालय' के लिए भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की पहली अनुसूची के अधीन केन्द्रीय सरकार से मान्यताप्राप्त करना आज्ञापक है ।

44. द्वितीय प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए, वर्तमान मामले के तथ्यों का उल्लेख करना वांछनीय है । अपोलो महाविद्यालय और महात्मा गांधी महाविद्यालय दोनों को खोले जाने के लिए राजस्थान राज्य द्वारा अनुज्ञा दी गई थी और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा मान्यताप्राप्त विश्वविद्यालय से संबद्ध थे । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् की निरीक्षण समिति ने समय-समय पर अपोलो महाविद्यालय का निरीक्षण किया और समिति ने निरीक्षण रिपोर्ट, 2003 द्वारा छात्रों के दाखिले की सिफारिश भवन की कतिपय कमियों को दूर करने की शर्त के अधीन की, क्योंकि महाविद्यालय एक किराए के भवन में खोला गया था । केन्द्रीय सरकार ने तारीख 26 सितम्बर, 2003 द्वारा कृषि विश्वविद्यालय को सूचित किया कि वह अपोलो महाविद्यालय को न्यूनतम अपेक्षाएं पूर्ण करने का अनुरोध करे । यद्यपि भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा तारीख 12 मई, 2005 और 20 मई, 2005 को समाचार-पत्रों में यह सूचित करते हुए लोक सूचना जारी की गई कि अपोलो महाविद्यालय के छात्रों की पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की अर्हता मान्यताप्राप्त पशु-चिकित्सा अर्हता नहीं है, तो भी भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख 22 नवम्बर, 2005 के पत्र द्वारा अपोलो महाविद्यालय में छात्रों को दाखिला देने के लिए अनापत्ति प्रमाणपत्र अनुदत्त किया गया । उसके पश्चात् भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् के निरीक्षकों द्वारा तारीख 22 और 24 जनवरी, 2007 को अपोलो महाविद्यालय का निरीक्षण किया गया और उन्होंने रिपोर्ट प्रस्तुत की तथा यह सूचित किया कि अपोलो महाविद्यालय भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा अपेक्षित सन्नियमों और शर्तों का पालन कर रहा है । उसके पश्चात् कृषि विश्वविद्यालय और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् प्रतिनिधियों के बीच तारीख 2 फरवरी, 2008 को हुई बैठक के अनुसरण में भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा तारीख 10 मार्च, 2008 को अपोलो महाविद्यालय के छात्रों के प्रथम बैच की बाबत पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की डिग्री को अनंतिम मान्यता देने का विनिश्चय किया गया । छात्रों के द्वितीय बैच के संबंध में, भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख

27 फरवरी, 2009 को केन्द्रीय सरकार से अनुरोध किया कि अपोलो महाविद्यालय के वर्ष 2004 में दाखिल हुए छात्रों के द्वितीय बैच की अर्हता को मान्यता देने के लिए आवश्यक कार्रवाई की जाए । इसी प्रकार का पत्र तृतीय बैच के उन छात्रों के संबंध में जारी किया गया जिन्हें दिसम्बर, 2004 में दाखिला दिया गया था । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने तारीख 24 जुलाई, 2009 को कृषि विश्वविद्यालय को भी सूचित किया कि अपोलो महाविद्यालय शैक्षणिक सत्र 2009-2010 के लिए छात्रों का दाखिला कर सकता है । भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा अनुदत्त की गई ऐसी मान्यता और शैक्षणिक सत्र 2009-2010 के लिए छात्रों को दाखिला देने के लिए अनुदत्त की गई अनुज्ञा को दृष्टिगत करते हुए अपोलो महाविद्यालय में छात्रों को दाखिला दिया गया ।

45. यह विवादग्रस्त नहीं है कि अपोलो महाविद्यालय में छात्रों को राजस्थान प्री-मेडीकल/राजस्थान प्री-वैटरीनरी (आरपीएम/आरपीवी) खुली प्रवेश परीक्षा के अनुसरण में दाखिला दिया गया था । उन्होंने अपना पाठ्यक्रम पूरा किया और पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की । वे छात्र, जो अपोलो महाविद्यालय से पहले उत्तीर्ण होकर गए हैं, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय द्वारा अनुदत्त पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की बुनियादी डिग्री के धारक हैं, जोकि भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की पहली अनुसूची में प्रविष्ट मान्यताप्राप्त अर्हता है । यह भी विवादग्रस्त नहीं है कि ऐसे बहुत से छात्र जो पहले उत्तीर्ण होकर गए हैं, सरकारी या प्राइवेट सेवा में हैं । वह एकमात्र आधार जिस पर अपोलो महाविद्यालय के उन छात्रों को, जो पहले ही पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की डिग्री परीक्षा उत्तीर्ण करके गए हैं, भिन्न समझा गया है यह है कि केन्द्रीय सरकार ने अपोलो महाविद्यालय को अधिसूचित नहीं किया है और तद्द्वारा इसे भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की पहली अनुसूची में सम्मिलित नहीं किया गया है । स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर संविधि द्वारा सम्यक् रूप से स्थापित विश्वविद्यालय है और यह परीक्षाओं का संचालन करने और पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिग्री देने के लिए पूर्णतः सक्षम है । इस विश्वविद्यालय द्वारा अनुदत्त पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिग्री को भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की पहली अनुसूची में ऐसी डिग्री के रूप में सम्मिलित किया गया है जो भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद्, जोकि संविधि द्वारा स्थापित सर्वोपरि

व्यावसायिक निकाय है, द्वारा पूर्णतः मान्यताप्राप्त है और जिसे किसी विश्वविद्यालय द्वारा अनुदत्त पशु-चिकित्सा अर्हताओं को मान्यता देने का प्राधिकार है ।

46. हमारी राय में, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित करके स्पष्ट गलती की है कि चूंकि छात्रों के पास पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक की जो डिग्री है वह ऐसी नहीं है जिसे किसी मान्यताप्राप्त महाविद्यालय से अभिप्राप्त किया गया हो और इसे भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् (रजिस्ट्रीकरण) विनियम, 1992 के अधीन रजिस्ट्रीकरण के प्रयोजन और अन्य प्रयोजन के लिए एक विधिमान्य अर्हता समझा जा सके ।

47. महात्मा गांधी महाविद्यालय के छात्रों के संबंध में भी ऐसी ही स्थिति है । वास्तव में, निरीक्षण समिति द्वारा प्रत्येक बार अनुकूल रिपोर्ट दी गई और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने महाविद्यालय को छात्रों को दाखिला देने के लिए अनुज्ञात किया तथा केन्द्रीय सरकार को पहली अनुसूची में महाविद्यालय के नाम की प्रविष्टि करके संशोधन करने की सिफारिश की । जब इस महाविद्यालय से उत्तीर्ण होकर गए छात्रों ने महात्मा गांधी महाविद्यालय को पहली अनुसूची में सम्मिलित करते हुए समुचित अधिसूचना जारी करने के लिए केन्द्रीय सरकार को निदेश देने हेतु उच्च न्यायालय के समक्ष समावेदन किया तो पशु-चिकित्सा परिषद् ने अपनी सिफारिश वापस ले ली । हमने अपोलो महाविद्यालय से उत्तीर्ण होकर गए छात्रों के संबंध में जो मत व्यक्त किया है, वह उन छात्रों के बारे में भी समान रूप से लागू होता है जो महात्मा गांधी महाविद्यालय से उत्तीर्ण होकर गए हैं ।

48. वास्तव में, पश्चात्वर्ती कवायद से, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह दर्शित होता है कि भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् ने केन्द्रीय सरकार से अपोलो महाविद्यालय और महात्मा गांधी महाविद्यालय को मान्यता देने के लिए पुनः सिफारिश की है और केन्द्रीय सरकार ने पहले ही कतिपय प्रश्न उठाए हैं ।

49. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ को उन छात्रों, जो पहले ही केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर से संबद्ध अपोलो महाविद्यालय और महात्मा गांधी महाविद्यालय से उत्तीर्ण होकर गए हैं, के संबंध में केन्द्रीय सरकार को भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की पहली

अनुसूची में अपोलो महाविद्यालय के संबंध में तारीख 11 जुलाई, 2011 को या इससे पूर्व और महात्मा गांधी महाविद्यालय की बाबत तारीख 8 दिसम्बर, 2011 या इससे पूर्व की पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक डिग्री की मान्यता के प्रयोजन के लिए समुचित संशोधन करने का निदेश देते हुए एक संभव विधिक हल देना चाहिए था ताकि अपोलो महाविद्यालय और महात्मा गांधी महाविद्यालय को पहली अनुसूची में सम्मिलित किया जा सके । हम तद्नुसार निदेश देते हैं । जहां तक उन अन्य छात्रों का संबंध है, जो अपोलो महाविद्यालय और महात्मा गांधी महाविद्यालय में दाखिल किए गए हैं और अपनी पढ़ाई कर रहे हैं, केन्द्रीय सरकार को निदेश दिया जाता है कि वह भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् से एक नई रिपोर्ट मंगाए और भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1984 की धारा 21(4) के साथ पठित धारा 15(2) के अधीन समुचित आदेश पारित करे । यदि अपोलो महाविद्यालय और महात्मा गांधी महाविद्यालय को उस तारीख से परे, जैसा कि ऊपर आदेश किया गया है, मान्यता देना संभव नहीं है तो भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् को निदेश दिया जाता है कि वह छात्रों को पशु-चिकित्सा विज्ञान तथा पशु पालन में स्नातक के पाठ्यक्रम को पूर्ण करने के लिए उनके संगत वर्ष के हिसाब से किन्हीं अन्य मान्यताप्राप्त महाविद्यालयों में स्थानांतरित करें ।

50. पूर्वोक्त कारणों से, हम राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर न्यायपीठ, जयपुर की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 17 नवम्बर, 2011 को पारित किए गए निर्णय और आदेश तथा राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर न्यायपीठ, जयपुर के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 23 दिसम्बर, 2011 को पारित किए गए निर्णय और आदेश तथा भारतीय पशु-चिकित्सा परिषद् द्वारा राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् को उनके रजिस्टर से डाक्टरों के नामों को हटाने का निदेश देते हुए जारी किए गए पत्रों को अपास्त करते हैं । ये अपीलें उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों और निदेशों के साथ मंजूर की जाती हैं । मध्यक्षेप करने, मुकदमा चलाने और नाम हटाने के लिए अंतर्वर्ती आवेदनों का ऊपर अभिलिखित निष्कर्ष को दृष्टिगत करते हुए निपटारा किया जाता है । खर्चे के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

———————

[2014] 4 उम. नि. प. 262

पवन कुमार रल्ली

बनाम

मनिंदर सिंह नरुला

11 अगस्त, 2014

न्यायमूर्ति (श्रीमती) रंजना प्रकाश देसाई और न्यायमूर्ति एन. वी. रमना

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) – धारा 138, 141 और 142 [सपठित दंड संहिता की धारा 420 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482] – चैक का अनादरण – परिवादी-अपीलार्थी द्वारा बैंक से चैक के अनादरण की जानकारी प्राप्त होने पर अभियुक्त-प्रत्यर्थी को हस्तलिखित टिप्पण द्वारा रकम का संदाय करने की सूचना दिया जाना – अभियुक्त द्वारा कोई उत्तर न देने पर विधिक सूचना जारी करना और बाद में परिवाद फाइल किया जाना – अभियुक्त द्वारा परिसीमा के प्रश्न के आधार पर दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए उच्च न्यायालय में मामला फाइल किया जाना – चूंकि अधिनियम में सूचना का कोई विहित प्ररूप नहीं दिया गया है, इसलिए यदि हस्तलिखित टिप्पण में सूचना के सभी संघटक मौजूद होते हैं, तो उसे विधिक सूचना माना जा सकता है ।

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) – धारा 138, 141 और 142 [सपठित दंड संहिता की धारा 420 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482] – चैक का अनादरण – परिवादी-अपीलार्थी द्वारा बैंक से चैक के अनादरण की जानकारी प्राप्त होने पर अभियुक्त-प्रत्यर्थी को हस्तलिखित टिप्पण द्वारा रकम का संदाय करने की सूचना दिया जाना – अभियुक्त द्वारा कोई उत्तर न देने पर विधिक सूचना जारी करना और बाद में परिवाद फाइल किया जाना – अभियुक्त द्वारा परिसीमा के प्रश्न के आधार पर दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए उच्च न्यायालय में मामला फाइल किया जाना – परिवादी द्वारा प्रथम बार उच्च न्यायालय के समक्ष विलंब की माफी के लिए आवेदन दिया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा विलंब की माफी के लिए आवेदन पर गुणागुण के आधार पर विचार न करके परिसीमा के आधार पर कार्यवाहियों को अभिखंडित किया जाना – अधिनियम की धारा 142(ख) के परंतुक को

अधिनियमित करने के विधायी आशय को देखते हुए उच्च न्यायालय ने विलंब की माफी के आवेदन पर गुणागुण के आधार पर विचार न करके और दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करके गलती की है, अतः परिसीमा के प्रश्न पर विचार करने के लिए मामले को विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित करना उचित होगा ।

अपीलार्थी के अनुसार उसने प्रत्यर्थी को 60 लाख रुपए का ऋण दिया था । प्रत्यर्थी ने अपनी बाध्यता के निर्वहन में उसे कतिपय चैक जारी किए थे । जब अपीलार्थी ने उक्त चैकों को वसूली के लिए अपने बैंक में प्रस्तुत किया तो प्रत्यर्थी के बैंक द्वारा 'संदाय रोक दिया गया है' टिप्पणी के साथ उन्हें अनादृत कर दिया गया । अपीलार्थी ने चैकों के अनादरण के बारे में अपने बैंक से संसूचना प्राप्त होने के पश्चात् प्रत्यर्थी को रकम का संदाय करने के लिए कहते हुए तारीख 27 अप्रैल, 2012 को एक लिखित सूचना जारी की । प्रत्यर्थी द्वारा अननुपालन करने पर उसे अधिनियम की धारा 138/142 के अधीन तारीख 24 मई, 2012 को एक औपचारिक विधिक सूचना यह अपेक्षा करते हुए जारी की गई कि चैकों की रकम का ब्याज और खर्चे सहित संदाय किया जाए । प्रत्यर्थी ने विधिक सूचना के अपने उत्तर में अपीलार्थी से ऋण लेने के अभिकथन से पूरी तरह से असहमति जाहिर की । इसके पश्चात्, अपीलार्थी ने अधिनियम की धारा 138, 141 और 142 तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 420 का अवलंब लेते हुए प्रत्यर्थी के विरुद्ध एक परिवाद फाइल किया । महानगर मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और प्रत्यर्थी को समन किया, जिसने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया । प्रत्यर्थी ने विचारण के लंबित रहने के दौरान विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन दांडिक प्रकीर्ण मामला फाइल किया । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि परिवाद तारीख 27 अप्रैल, 2012 की सूचना की प्राप्ति के 15 दिन के अवसान के पश्चात् एक माह की अवधि के भीतर फाइल नहीं किया गया था और इसलिए यह अधिनियम की धारा 142(ख) के अधीन परिसीमा द्वारा वर्जित था और आक्षेपित निर्णय द्वारा प्रत्यर्थी के विरुद्ध दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित कर दिया । अपीलार्थी-परिवादी ने उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर विशेष इजाजत याचिका के माध्यम से उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – स्वीकृततः, प्रस्तुत मामले में प्रश्नगत चैक प्रत्यर्थी द्वारा जारी किए गए थे और 'संदाय रोक देने' के उसके अनुदेश पर बैंक द्वारा अनादृत किए गए थे । दो संसूचनाएं, एक स्वयं अपीलार्थी द्वारा तारीख 27 अप्रैल, 2012 के हस्तलिखित टिप्पण द्वारा और दूसरी अधिवक्ता द्वारा जारी की गई तारीख 24 मई, 2012 की औपचारिक विधिक सूचना प्रत्यर्थी को उसे चैकों की रकम का संदाय करने के लिए कहते हुए तामील की गई थी । प्रत्यर्थी ने हस्तलिखित संसूचना का कोई उत्तर नहीं दिया, किंतु अधिवक्ता के माध्यम से तारीख 24 मई, 2012 को जारी की गई विधिक सूचना का अभिकथन से इनकार करते हुए उत्तर दिया । प्रत्यर्थी के हस्तलिखित संसूचना तथा विधिक सूचना का पालन करने में असफल रहने पर अपीलार्थी ने तारीख 5 जुलाई, 2012 को परिवाद मामला फाइल करके दांडिक कार्यवाहियां आरंभ कीं । यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष मामले में प्रतिवाद किया और अपीलार्थी से विभिन्न कागजात प्रस्तुत करने हेतु कहने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 91 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । उसने परिवाद को एक भिन्न न्यायालय में अंतरित करने की ईप्सा करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 410 के अधीन भी एक आवेदन फाइल किया । यह महत्वपूर्ण है कि विचारण न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थी ने 'परिसीमा' का विवाद्यक नहीं उठाया । यह विवाद्यक पहली बार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन कार्यवाहियों में उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया गया । उच्च न्यायालय अपीलार्थी द्वारा तारीख 27 अप्रैल, 2012 को भेजे गए हस्तलिखित टिप्पण को अधिनियम की धारा 138 के अधीन 'सूचना' मानकर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि परिवाद परिसीमा द्वारा वर्जित है । न्यायालय ने तारीख 27 अप्रैल, 2012 के हस्तलिखित टिप्पण (उपाबंध पी-4) का परिशीलन किया और यह पाया कि यह हस्तलिखित टिप्पण चैकों के अनादर होने के तीस दिन की आज्ञापक अवधि के भीतर जारी किया गया था और इसमें यह अंतर्विष्ट था – (क) अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को वचनपत्रों के अधीन ऋण के रूप में दी गई 60,00,000/- रुपए की विषयगत रकम ; (ख) चैक संख्यांकों का ब्यौरा और रकम तथा बैंक के विवरण सहित उनके जारी करने की तारीख ; (ग) प्रत्यर्थी द्वारा 'संदाय रोक देने' के आधार पर बैंक द्वारा चैकों को अनादृत करते हुए लौटाए जाना ; (घ) रकम के तुरंत प्रतिसंदाय की मांग ; और (ङ) प्रत्यर्थी को यह चेतावनी कि उसके द्वारा रकम का प्रतिसंदाय करने में असफल रहने पर अपीलार्थी विधिक कार्यवाहियां आरंभ करेगा । इस प्रकार, न्यायालय की

राय में, तारीख 27 अप्रैल, 2012 के हस्तलिखित टिप्पण में धारा 138 के परंतुक के खंड (ख) की आज्ञापक अपेक्षाओं को पूर्ण किया गया है और इसे एक विधिमान्य 'सूचना' कहा जा सकता है । इसके अतिरिक्त, इस दस्तावेज को अपीलार्थी द्वारा अपनी प्रतिपरीक्षा में भी स्वीकार किया गया है । इसलिए, न्यायालय की राय में, उच्च न्यायालय ने तारीख 27 अप्रैल, 2012 के हस्तलिखित टिप्पण को अधिनियम की धारा 138 के अधीन 'सूचना' के रूप में मानकर कोई गलती नहीं की है । (पैरा 17 और 19)

तथापि, जब उच्च न्यायालय के समक्ष पहली बार परिसीमा का प्रश्न आया, तो उसे इस पर अधिनियम की धारा 142(ख) के परंतुक के अनुसार गुणागुण के आधार पर विचार करना चाहिए था । अधिनियम की धारा 142 के खंड (ख) से संलग्न उक्त परंतुक परक्राम्य लिखत (संशोधन और प्रकीर्ण उपबंध) अधिनियम, 2002 द्वारा पुरःस्थापित किया गया था और निःसंदेह विधायी आशय परिसीमा अवधि की तकनीकी को दूर करना था । संशोधन विधेयक, 2002 से संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन में यह सुझाया गया है कि इस परंतुक का पुरःस्थापन परिसीमा अवधि का पर्यवसान हो जाने के पश्चात् भी न्यायालय को अपराध का संज्ञान लेने के लिए विवेकाधिकार उपलब्ध कराने के लिए किया गया है । संसद् ने परिवादी को होने वाली कठिनाइयों का निराकरण करने की बात को ध्यान में रखते हुए ही वर्ष 2002 में अधिनियम की धारा 142 के खंड (ख) के साथ परंतुक को पुरःस्थापित किया था । यह परंतुक विलंब को माफ करने के लिए न्यायालय को अधिकारिता प्रदत्त करता है । निःसंदेह, यह सत्य है कि परिवाद फाइल करने के समय यदि यह परिसीमा के भीतर है तो मजिस्ट्रेट को इस पर संज्ञान लेना होता है और परिवाद फाइल करने में विलंब की दशा में परिवादी को विलंब की माफी की ईप्सा करने वाले आवेदन के साथ आना होता है । किंतु प्रस्तुत मामले का विशिष्ट तथ्य यह है कि परिवादी ने परिवाद में केवल यह प्रकथन किया था कि उसने तारीख 24 मई, 2012 को विधिक सूचना भेजी थी किंतु उसने तारीख 27 अप्रैल, 2012 के हस्तलिखित टिप्पण के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया । विद्वान् विचारण न्यायाधीश का उक्त प्रकथन के आधार पर यह समाधान हो गया था कि परिवाद विहित परिसीमा अवधि के भीतर फाइल किया गया है । इसलिए इस मामले में परिसीमा का अभिवाक् करने और विलंब की माफी के लिए न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग करने की बात उद्भूत ही नहीं हुई । इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, विधायी आशय और विशेष इजाजत याचिका के लिए दिए गए आधारों में अपीलार्थी के इस

विनिर्दिष्ट अभिवाक् को ध्यान में रखते हुए कि उसे विचारण न्यायालय के समक्ष विलंब की माफी के लिए आवेदन फाइल करने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए क्योंकि 25 दिन के विलंब के कारण प्रत्यर्थी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है, यह न्यायालय दृढ़तापूर्वक यह महसूस करता है कि अपीलार्थी को विधान-मंडल द्वारा उपलब्ध कराए गए उपचार से वंचित नहीं किया जाना चाहिए । वास्तव में, इस प्रकार उपलब्ध कराया गया उपचार परिसीमा की तकनीकी कठिनाई को दूर करके मुकदमा लड़ने वाले असली व्यक्ति को व्यतिक्रमी के विरुद्ध अपना मामला चलाने के लिए समर्थ बनाने हेतु है । इसलिए उच्च न्यायालय ने परिसीमा के विवाद्यक पर गुणागुण के आधार पर विचार न करके गलती की है । सभी पूर्वोक्त कारणों से, न्याय की प्राप्ति के लिए यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करता है और उच्च न्यायालय के दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने वाले आक्षेपित निर्णय को अपास्त करता है तथा विचारण न्यायालय के समक्ष चल रही दांडिक कार्यवाहियों को प्रत्यावर्तित करता है । अपीलार्थी को विचारण न्यायालय के समक्ष विलंब की माफी के लिए आवेदन फाइल करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है और यदि ऐसा आवेदन फाइल किया जाता है तो विचारण न्यायालय इस पर इसके गुणागुण के आधार पर, इस न्यायालय द्वारा की गई किसी मताभिव्यक्ति से प्रभावित हुए बिना, विचार करने के लिए स्वतंत्र होगा और समुचित आदेश पारित करेगा । (पैरा 20, 21, 22, 23 और 25)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 1 एस. सी. सी. 177 : **एमएसआर लेदर्स** बनाम **एस. पलानियाप्पन** ;	20, 23
[2008]	(2008) 13 एस. सी. सी. 689 : **सुबोध एस. सालस्कर** बनाम **जयप्रकाश एम. शाह** ;	20, 23
[2007]	(2007) 7 एस. सी. सी. 656 : **राकेश कुमार जैन** बनाम **राज्य (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत)** ;	9, 23
[1999]	(1999) 8 एस. सी. सी. 304 : **रमेश चंद शर्मा** बनाम **उधम सिंह कमाल और अन्य** ;	12

[1999] (1999) 8 एस. सी. सी. 221 :
सैंट्रल बैंक आफ इंडिया और एक अन्य
बनाम **सैक्सोंस फार्म और अन्य** । 11, 18, 19

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 1684.

2012 के दांडिक प्रकीर्ण मामला सं. 2961 में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 15 जनवरी, 2013 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री हज़ीफा अहमदी, ज्येष्ठ अधिवक्ता (न्याय-मित्र) और उनके साथ रोहन शर्मा, अज़ल खान, (सुश्री) गीतांजली शर्मा और टी. वी. जार्ज

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री विपिन कुमार जय, मनीष मिगलानी और विपुल जय

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एन. वी. रमना ने दिया ।

न्या. रमना – इजाजत दी जाती है ।

2. यह अपील इस मामले में प्रत्यर्थी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन फाइल किए गए 2012 के दांडिक प्रकीर्ण मामला सं. 2961 में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 15 जनवरी, 2013 के निर्णय और आदेश से उद्भूत हुई है । उक्त निर्णय द्वारा उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) के अधीन प्रत्यर्थी के विरुद्ध आरंभ की गई कार्यवाहियों को अभिखंडित कर दिया था ।

3. अपीलार्थी के अनुसार, इस मामले का संक्षिप्त वृत्तांत यह है कि उसने प्रत्यर्थी को नवम्बर, 2011 में 60 लाख रुपए का ऋण दिया था । प्रत्यर्थी ने अपनी बाध्यता के निर्वहन में अपीलार्थी को तारीख 22 अप्रैल, 2012 को (i) इलाहाबाद बैंक पर आहृत 30 लाख रुपए का चैक सं. 889953, (ii) आईसीआईसीआई बैंक पर आहृत 20 लाख रुपए का चैक सं. 545420, (iii) आईसीआईसीआई बैंक पर आहृत 10 लाख रुपए का चैक सं. 545409 जारी किए थे । जब अपीलार्थी ने उक्त चैकों को वसूली के लिए अपने बैंक में प्रस्तुत किया तो प्रत्यर्थी के बैंक द्वारा 'संदाय रोक

दिया गया है' टिप्पणी के साथ उन्हें अनादृत कर दिया गया ।

4. अपीलार्थी ने चैकों के अनादरण के बारे में अपने बैंक से संसूचना प्राप्त होने के पश्चात् प्रत्यर्थी को रकम का संदाय करने के लिए कहते हुए तारीख 27 अप्रैल, 2012 को एक लिखित सूचना (प्रदर्श पी-4) जारी की । प्रत्यर्थी द्वारा अननुपालन करने पर उसे अधिनियम की धारा 138/142 के अधीन तारीख 24 मई, 2012 को एक औपचारिक विधिक सूचना (प्रदर्श पी-5) यह अपेक्षा करते हुए जारी की गई कि चैकों की रकम का ब्याज और खर्चे सहित संदाय किया जाए । प्रत्यर्थी ने विधिक सूचना के अपने उत्तर में अपीलार्थी से ऋण लेने के अभिकथन से पूरी तरह से असहमति जाहिर की । इसके पश्चात्, अपीलार्थी ने अधिनियम की धारा 138, 141 और 142 तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 420 का अवलंब लेते हुए प्रत्यर्थी के विरुद्ध एक परिवाद फाइल किया । महानगर मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और प्रत्यर्थी को समन किया, जिसने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया ।

5. प्रत्यर्थी ने विचारण के लंबित रहने के दौरान विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन दांडिक प्रकीर्ण मामला फाइल किया । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि परिवाद तारीख 27 अप्रैल, 2012 की सूचना की प्राप्ति के 15 दिन के अवसान के पश्चात् एक माह की अवधि के भीतर फाइल नहीं किया गया था और इसलिए यह अधिनियम की धारा 142(ख) के अधीन परिसीमा द्वारा वर्जित था और आक्षेपित निर्णय द्वारा प्रत्यर्थी के विरुद्ध दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित कर दिया । अपीलार्थी-परिवादी ने उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर विशेष इजाजत याचिका के माध्यम से इस न्यायालय में समावेदन किया ।

6. हमारे समक्ष अपीलार्थी का पक्षकथन यह है कि उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करके न्यायोचित्य नहीं किया है । उच्च न्यायालय ने हस्तलिखित टिप्पण को गलत रूप से विधिक सूचना के रूप में माना और तद्नुसार परिसीमा अवधि की गणना की । जबकि हस्तलिखित टिप्पण से अभियुक्त को केवल एक जानकारी दी गई थी और विधि के उपबंधों के अनुसार वास्तविक सूचना चैकों के अनादर की तारीख से 30 दिन के भीतर तारीख 24 मई, 2012 को जारी की गई थी और तद्नुसार दांडिक कार्यवाहियां

परिसीमा अवधि के ठीक भीतर आरंभ की गई थीं । किंतु उच्च न्यायालय इस तात्विक तथ्य पर विचार करने में असफल रहा और हस्तलिखित टिप्पण की तामीली की तारीख से केवल 25 दिन के विलंब के आधार पर दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित कर दिया । उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को अनदेखा कर दिया कि अधिनियम में न्यायालय को 30 दिन की परिसीमा अवधि के परे विलंब, यदि कोई हो, की माफी के लिए अधिनियम की धारा 142(ख) के परंतुक के अधीन स्पष्ट तौर पर समर्थ बनाया गया है ।

7. सुनवाई के दौरान हमने यह महसूस किया कि किसी ज्येष्ठ काउंसेल की सहायता लेना उचित रहेगा और हमने तद्नुसार विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री हज़ीफा अहमदी को न्याय-मित्र के रूप में नियुक्त किया ।

8. विद्वान् न्याय-मित्र ने यह दलील दी कि तारीख 27 अप्रैल, 2012 का हस्तलिखित टिप्पण, जिसके द्वारा अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को संदाय करने के लिए कहा था, अधिनियम की धारा 138(ख) के अधीन 'सूचना' के अंतर्गत आएगा और अधिनियम के अधीन परिवाद फाइल करने में 25 दिन का विलंब था । विद्वान् न्याय-मित्र ने यह भी दलील दी कि अधिनियम की धारा 142(ख) के परंतुक में न्यायालय को तब विलंब की माफी के लिए शक्ति प्रदत्त की गई है यदि परिवादी विलंब के भाग पर न्यायालय का समाधान कर देता है । क्योंकि विचारण न्यायालय द्वारा यह विश्वास किया गया कि चूंकि विधिक सूचना तारीख 24 मई, 2012 को जारी की गई थी और परिसीमा अवधि इस तारीख से ही प्रवृत्त होगी, इसलिए अपीलार्थी के पास विलंब की माफी के लिए पर्याप्त हेतुक का अभिवाक् करने का कोई अवसर नहीं था क्योंकि विचारण न्यायालय के समक्ष विलंब संबंधी प्रश्न उद्भूत ही नहीं हुआ । आदेशिका जारी करते समय विचारण न्यायालय का यह स्पष्ट मत था कि परिवाद में किए गए प्रकथनों के आधार पर परिवाद परिसीमा के भीतर फाइल किया गया है । इसलिए अपीलार्थी के लिए विलंब के लिए पर्याप्त हेतुक का अभिवाक् करने का कोई अवसर उद्भूत नहीं हुआ । इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी ने भी विचारण न्यायालय के समक्ष परिसीमा का प्रश्न नहीं उठाया और परिसीमा का प्रश्न प्रथम बार उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया गया ।

9. अन्यथा भी, उच्च न्यायालय दांडिक कार्यवाहियों को परिसीमा के आधार पर अभिखंडित करने से पूर्व यह विनिश्चित कर सकता था कि क्या अपीलार्थी के पास अधिनियम की धारा 142(ख) के परंतुक के अधीन

पर्याप्त कारण है या नहीं और यदि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाता, तो वह विलंब को माफ कर सकता था । अनुकल्पतः, उच्च न्यायालय मामले को विवाद्यक का अवधारण के लिए विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर सकता था । विद्वान् न्याय-मित्र ने अपनी दलील के समर्थन में **राकेश कुमार जैन** बनाम **राज्य (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत)**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया, जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 473 के उपबंधों पर विचार करते हुए और इस प्रश्न का विनिश्चय करते हुए कि क्या परिसीमा के आधार पर अभियुक्त अपनी उन्मुक्ति की ईप्सा करने का हकदार है, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "केवल इस तथ्य से कि परिवाद परिसीमा अवधि के पर्यवसान के 25 दिन पश्चात् फाइल किया गया था, अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 245 के अधीन अपनी उन्मुक्ति की ईप्सा करने का हकदार नहीं हो जाता है क्योंकि परिवादी को, विधि के अधीन, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 473 के अधीन समय का विस्तार करने की ईप्सा करने का अधिकार है । परिवादी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर मजिस्ट्रेट यह समाधान कर सकता है कि परिवाद फाइल करने के प्रयोजन के लिए अनुमति अभिप्राप्त करने के उनके सद्भावी विश्वास के कारण जो विलंब हुआ है उसका स्पष्टीकरण दिया जा सकता है ।"

10. विद्वान् न्याय-मित्र ने अंततः यह दलील दी कि अधिनियम की धारा 142 के खंड (ख) के साथ परंतुक को अंतःस्थापित करने का विधायी आशय ही चैक धारकों को उन व्यतिक्रमियों से संरक्षित करना है जो चैक जारी करते हैं और न्यायालय को चैक धारक को विलंब, यदि कोई हो, के विवाद्यक पर अपना प्रकथन प्रस्तुत करने का अवसर देकर युक्तियुक्त रूप से कार्य करना चाहिए । न्यायालय को चैक के धारक द्वारा दिए गए कारणों पर विचार करने के पश्चात् विलंब के प्रश्न पर विचार करना चाहिए और केवल उसके पश्चात् ही कोई आदेश पारित करना चाहिए । किंतु वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने परिसीमा के आधार पर विलंब के लिए, और वह भी केवल 25 दिन के विलंब के लिए, दिए गए अपीलार्थी के कारणों पर विचार किए बिना दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करते हुए आक्षेपित आदेश पारित करके अवांछनीय दृष्टिकोण अपनाया है । उसने

---

[1] (2007) 7 एस. सी. सी. 656.

आगे यह भी दलील दी कि आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय की यह मताभिव्यक्ति भी न्याय के हित में नहीं है कि "अपीलार्थी को प्रत्यर्थी के विरुद्ध परिवाद चलाने के लिए अनुज्ञात करना प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा" ।

11. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि परिसीमा के आधार पर दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करते हुए पारित उच्च न्यायालय के निर्णय में कोई स्पष्ट गलती नहीं है । उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा तारीख 27 अप्रैल, 2012 को भेजे गए हस्तलिखित टिप्पण को ठीक ही अधिनियम की धारा 138 के निबंधनों के अनुसार एक विधिमान्य सूचना माना है, क्योंकि अपीलार्थी ने लिखित में सूचना अपने बैंक से चैकों के अनादरण की जानकारी प्राप्त होने के पंद्रह दिन के भीतर दी थी । विद्वान् काउंसेल ने इस दलील के समर्थन में **सैंट्रल बैंक आफ इंडिया और एक अन्य** बनाम **सैक्सोन्स फार्म और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को उद्धृत किया, जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि अधिनियम की धारा 138 के खंड (ख) में सूचना का कोई प्ररूप विहित नहीं है, तो भी यह अपेक्षा की गई है कि चैक के असंदत्त लौटाए जाने के संबंध में बैंक से जानकारी प्राप्त होने के पंद्रह दिन के भीतर सूचना लिखित में दी जाएगी और सूचना में चैक की रकम के संदाय की मांग की जाएगी । इसलिए विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि इस स्थिर विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी द्वारा तारीख 27 अप्रैल, 2012 को जारी की गई प्रथम सूचना से चूंकि इस न्यायालय द्वारा अधिकथित मानदंड पूरा हो गया था, इसलिए इसे अधिनियम की धारा 138(ख) के अंतर्गत "सूचना" समझा जाना चाहिए । अतः, विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने परिवाद फाइल करने में हुए विलंब की गणना करने के प्रयोजन के लिए हस्तलिखित टिप्पण को "सूचना" के रूप में मानकर ठीक किया है और उसने ठीक ही यह घोषित किया है कि परिवाद परिसीमा द्वारा वर्जित है ।

12. प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने आगे यह दलील दी कि यद्यपि अधिनियम की धारा 142(ख) में तब विलंब की माफी को सुकर बनाया गया है यदि परिवादी न्यायालय का यह समाधान कर देता है कि उसके पास परिसीमा के भीतर परिवाद फाइल न कर पाने के सटीक कारण हैं, किंतु वर्तमान मामले में परिवादी ने उच्च न्यायालय के समक्ष

---

[1] (1998) 8 एस. सी. सी. 221.

विलंब की माफी के ऐसे फायदे का उपभोग करने के लिए कोई अनुरोध नहीं किया था । विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील को सिद्ध करने के लिए अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र का अवलंब लिया और यह दलील दी कि इसमें भी अपीलार्थी ने विलंब की माफी के लिए अभिवाक् करने के बजाय यह आधार लिया कि तारीख 27 अप्रैल, 2012 की संसूचना को सूचना के रूप में न माना जाए, जबकि इस संसूचना में अधिनियम की धारा 138 के अधीन "सूचना" के सभी संघटक पूर्ण हैं । विद्वान् काउंसेल ने अपने इस दावे के समर्थन में कि यह मामला परिसीमा द्वारा वर्जित है और आरंभ में ही खारिज किया जाना चाहिए, **रमेश चंद शर्मा** बनाम **उधम सिंह कमाल और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया और यह दलील दी कि उस मामले में भी अपीलार्थियों द्वारा उठाए गए परिसीमा के आक्षेप के बावजूद प्रथम प्रत्यर्थी ने विलंब की माफी के लिए कोई आवेदन नहीं दिया और इस न्यायालय ने प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए मूल आवेदन को परिसीमा के आधार पर खारिज कर दिया था ।

13. अतः, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने विद्वान् न्याय-मित्र के इस अभिवाक् का दृढ़तापूर्वक विरोध किया कि अपीलार्थी को अधिनियम की धारा 142(ख) के परंतुक के अधीन परिकल्पित उपचार का उपभोग करने का अवसर देकर परिसीमा के विवाद्यक की सुनवाई करने के लिए मामले को विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर दिया जाना चाहिए । विद्वान् काउंसेल ने अंततः यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करके ठीक किया है और आक्षेपित आदेश में संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन इस न्यायालय को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

14. हमने विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना । उच्च न्यायालय द्वारा परिसीमा के विवाद्यक का अवधारण करने में अपनाए गए विरोधी दृष्टिकोण, जिसके परिणामस्वरूप विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित दांडिक कार्यवाहियां अभिखंडित की गईं, को ध्यान में रखते हुए इस मामले के निपटारे के लिए हमारे विचार हेतु निम्नलिखित विवाद्यक प्रकट होते हैं :–

(क) क्या अपीलार्थी द्वारा तारीख 27 अप्रैल, 2012 को प्रत्यर्थी को भेजे गए हस्तलिखित टिप्पण को 'सूचना' के रूप में माना जा

[1] (1999) 8 एस. सी. सी. 304.

सकता है या केवल अधिवक्ता द्वारा तारीख 24 मई, 2012 को जारी की गई सूचना को ही अधिनियम की धारा 138 के अधीन 'सूचना' माना जा सकता है ?

(ख) यदि वर्तमान मामले में परिवाद फाइल करने में कोई विलंब हुआ है, तो क्या उच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम के उपबंधों के अधीन ऐसे विलंब को माफ किया जाना चाहिए था या नहीं ?

(ग) क्या उच्च न्यायालय ने परिसीमा के आधार पर दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करके ठीक किया है या दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के बजाय उस मामले को परिसीमा के प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित करना चाहिए था ?

15. उपरोक्त विवाद्यकों पर विचार करने से पूर्व, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि अधिनियम की धारा 138 से संलग्न परंतुक में मुख्य उपबंध की प्रयोज्यता को यह उपबंध करते हुए सीमित किया गया है :–

138. खाते में अपर्याप्त निधियों, आदि के कारण चैक का अनादरण :

* * * * *

परंतु इस धारा में अंतर्विष्ट कोई बात तब तक लागू नहीं होगी जब तक –

(क) वह चैक उसके लिखे जाने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर या उसकी विधिमान्यता की अवधि के भीतर जो भी पूर्वतर हो, बैंक को प्रस्तुत न किया गया हो ;

(ख) चैक का पाने वाला या धारक, सम्यक् अनुक्रम में चैक के लेखीवाल को, असंदत्त चैक के लौटाए जाने की बाबत बैंक से उसे सूचना की प्राप्ति के तीस दिन के भीतर, लिखित रूप में सूचना देकर उक्त धनराशि के संदाय के लिए मांग नहीं करता है ; और

(ग) ऐसे चैक का लेखीवाल, चैक के पाने वाले को या धारक को उक्त सूचना की प्राप्ति के पंद्रह दिन के भीतर उक्त धनराशि का संदाय सम्यक् अनुक्रम में करने में असफल नहीं रहता है ।

16. अधिनियम की धारा 142 में भी अपराधों का संज्ञान लेने के लिए न्यायालय की शक्ति पर परिसीमा अधिरोपित की गई है, जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

142. अपराधों का संज्ञान – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, –

(क) कोई भी न्यायालय धारा 138 के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान, यथास्थिति, चैक के पाने वाले या सम्यक् अनुक्रम में धारक द्वारा किए गए परिवाद पर ही करेगा, अन्यथा नहीं ;

(ख) ऐसा परिवाद उस तारीख के एक मास के भीतर किया जाता है जिसको धारा 138 के परंतुक के खंड (ग) के अधीन वाद हेतुक उद्भूत होता है :

परंतु न्यायालय द्वारा किसी परिवाद का संज्ञान विहित अवधि के पश्चात् लिया जा सकेगा यदि परिवादी न्यायालय का यह समाधान कर देता है कि उसके पास ऐसी अवधि के भीतर परिवाद नहीं करने का पर्याप्त कारण था ;

(ग) महानगर मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय से अवर कोई न्यायालय धारा 138 के अधीन दंडनीय किसी अपराध का विचारण नहीं करेगा ।

17. स्वीकृततः, प्रस्तुत मामले में प्रश्नगत चैक प्रत्यर्थी द्वारा जारी किए गए थे और "संदाय रोक देने" के उसके अनुदेश पर बैंक द्वारा अनादृत किए गए थे । दो संसूचनाएं, एक स्वयं अपीलार्थी द्वारा तारीख 27 अप्रैल, 2012 के हस्तलिखित टिप्पण द्वारा और दूसरी अधिवक्ता द्वारा जारी की गई तारीख 24 मई, 2012 की औपचारिक विधिक सूचना प्रत्यर्थी को उसे चैकों की रकम का संदाय करने के लिए कहते हुए तामील की गई थीं । प्रत्यर्थी ने हस्तलिखित संसूचना का कोई उत्तर नहीं दिया, किंतु अधिवक्ता के माध्यम से तारीख 24 मई, 2012 को जारी की गई विधिक सूचना का अभिकथन से इनकार करते हुए उत्तर दिया । प्रत्यर्थी के हस्तलिखित संसूचना तथा विधिक सूचना का पालन करने में असफल रहने पर अपीलार्थी ने तारीख 5 जुलाई, 2012 को परिवाद मामला फाइल करके दांडिक कार्यवाहियां आरंभ कीं । यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष मामले में प्रतिवाद किया और अपीलार्थी से विभिन्न

कागजात प्रस्तुत करने हेतु कहने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 91 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । उसने परिवाद को एक भिन्न न्यायालय में अंतरित करने की ईप्सा करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 410 के अधीन भी एक आवेदन फाइल किया । यह महत्वपूर्ण है कि विचारण न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थी ने "परिसीमा" का विवाद्यक नहीं उठाया । यह विवाद्यक पहली बार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन कार्यवाहियों में उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया गया । उच्च न्यायालय अपीलार्थी द्वारा तारीख 27 अप्रैल, 2012 को भेजे गए हस्तलिखित टिप्पण को अधिनियम की धारा 138 के अधीन "सूचना" मानकर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि परिवाद परिसीमा द्वारा वर्जित है ।

18. **सैंट्रल बैंक आफ इंडिया और एक अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने पहले ही यह स्पष्ट किया है कि अधिनियम की धारा 138 में सूचना का कोई विनिर्दिष्ट प्ररूप विहित नहीं किया गया है, किंतु यह आज्ञापक है कि सूचना बैंक से चैक के अनादर होने के बारे में जानकारी प्राप्त होने पर तीस दिन के भीतर (तारीख 6 फरवरी, 2003 से प्रभावी) लेखीवाल से उक्त रकम का संदाय करने की मांग करते हुए लिखित में जारी की जानी चाहिए ।

19. हमने तारीख 27 अप्रैल, 2012 के हस्तलिखित टिप्पण (उपाबंध पी-4) का परिशीलन किया और यह पाया कि यह हस्तलिखित टिप्पण चैकों के अनादर होने के तीस दिन की आज्ञापक अवधि के भीतर जारी किया गया था और इसमें यह अंतर्विष्ट था – (क) अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को वचनपत्रों के अधीन ऋण के रूप में दी गई 60,00,000/- रुपए की विषयगत रकम ; (ख) चैक संख्यांकों का ब्यौरा और रकम तथा बैंक के विवरण सहित उनके जारी करने की तारीख ; (ग) प्रत्यर्थी द्वारा "संदाय रोक देने" के आधार पर बैंक द्वारा चैकों को अनादृत करते हुए लौटाए जाना ; (घ) रकम के तुरंत प्रतिसंदाय की मांग; और (ङ) प्रत्यर्थी को यह चेतावनी कि उसके द्वारा रकम का प्रतिसंदाय करने में असफल रहने पर अपीलार्थी विधिक कार्यवाहियां आरंभ करेगा । इस प्रकार, हमारी राय में, तारीख 27 अप्रैल, 2012 का हस्तलिखित टिप्पण में धारा 138 के परंतुक के खंड (ख) की आज्ञापक अपेक्षाओं को पूर्ण किया गया है और **सैंट्रल बैंक आफ इंडिया और एक अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए एक विधिमान्य "सूचना" कहा जा सकता

है । इसके अतिरिक्त, इस दस्तावेज (उपाबंध पी-4) को अपीलार्थी द्वारा अपनी प्रतिपरीक्षा में भी स्वीकार किया गया है । इसलिए, हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने तारीख 27 अप्रैल, 2012 के हस्तलिखित टिप्पण को अधिनियम की धारा 138 के अधीन "सूचना" के रूप में मानकर कोई गलती नहीं की है ।

20. तथापि, जब उच्च न्यायालय के समक्ष पहली बार परिसीमा का प्रश्न आया, तो उसे इस पर अधिनियम की धारा 142(ख) के परंतुक के अनुसार गुणागुण के आधार पर विचार करना चाहिए था । अधिनियम की धारा 142 के खंड (ख) से संलग्न उक्त परंतुक परक्राम्य लिखत (संशोधन और प्रकीर्ण उपबंध) अधिनियम, 2002 द्वारा पुरःस्थापित किया गया था और निःसंदेह विधायी आशय परिसीमा अवधि की तकनीकी को दूर करना था । संशोधन विधेयक, 2002 से संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन में यह सुझाया गया है कि इस परंतुक का पुरःस्थापन परिसीमा अवधि का पर्यवसान हो जाने के पश्चात् भी न्यायालय को अपराध का संज्ञान लेने के लिए विवेकाधिकार उपलब्ध कराने के लिए किया गया है । (**एमएसआर लेदर्स** बनाम **एस. पलानियाप्पन**[1] वाला मामला देखें) । संसद् ने परिवादी को होने वाली कठिनाइयों का निराकरण करने की बात को ध्यान में रखते हुए ही वर्ष 2002 में अधिनियम की धारा 142 के खंड (ख) के साथ परंतुक को पुरःस्थापित किया था । यह परंतुक विलंब को माफ करने के लिए न्यायालय को अधिकारिता प्रदत्त करता है । (**सुबोध एस. सलास्कर** बनाम **जयप्रकाश एम. शाह**[2] वाला मामला देखें) ।

21. निःसंदेह, यह सत्य है कि परिवाद फाइल करने के समय यदि यह परिसीमा के भीतर है तो मजिस्ट्रेट को इस पर संज्ञान लेना होता है और परिवाद फाइल करने में विलंब की दशा में परिवादी को विलंब की माफी की ईप्सा करने वाले आवेदन के साथ आना होता है । किंतु प्रस्तुत मामले का विशिष्ट तथ्य यह है कि परिवादी ने परिवाद में केवल यह प्रकथन किया था कि उसने तारीख 24 मई, 2012 को विधिक सूचना भेजी थी किंतु उसने तारीख 27 अप्रैल, 2012 के हस्तलिखित टिप्पण के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया । विद्वान् विचारण न्यायाधीश का उक्त प्रकथन के आधार पर यह समाधान हो गया था कि परिवाद विहित परिसीमा

---

[1] (2013) 1 एस. सी. सी. 177.

[2] (2008) 13 एस. सी. सी. 689.

अवधि के भीतर फाइल किया गया है । इसलिए इस मामले में परिसीमा का अभिवाक् करने और विलंब की माफी के लिए न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग करने की बात उद्भूत ही नहीं हुई ।

22. इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, विधायी आशय और विशेष इजाजत याचिका के लिए दिए गए आधारों में अपीलार्थी के इस विनिर्दिष्ट अभिवाक् को ध्यान में रखते हुए कि उसे विचारण न्यायालय के समक्ष विलंब की माफी के लिए आवेदन फाइल करने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए क्योंकि 25 दिन के विलंब के कारण प्रत्यर्थी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है, हम दृढ़तापूर्वक यह महसूस करते हैं कि अपीलार्थी को विधान-मंडल द्वारा उपलब्ध कराए गए उपचार से वंचित नहीं किया जाना चाहिए । वास्तव में, इस प्रकार उपलब्ध कराया गया उपचार परिसीमा की तकनीकी कठिनाई को दूर करके मुकदमा लड़ने वाले असली व्यक्ति को व्यतिक्रमी के विरुद्ध अपना मामला चलाने के लिए समर्थ बनाने हेतु है । इसलिए उच्च न्यायालय ने परिसीमा के विवाद्यक पर गुणागुण के आधार पर विचार न करके गलती की है ।

23. **राजेश कुमार जैन, एमएसआर लैदर्स** और **सुबोध एस. सालस्कर** (उपरोक्त) वाले मामलों में विधि के स्थिर सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए तथा इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, हमारा यह सुविचारित मत है कि उच्च न्यायालय ने परिवाद को मात्र इस आधार पर कि परिवाद परिसीमा द्वारा वर्जित है, और वह भी ऐसे अभिवाक् को जो प्रथम बार उच्च न्यायालय के समक्ष किया गया था, अभिखंडित करके ठीक नहीं किया गया है । दूसरी ओर, उच्च न्यायालय को मामला परिसीमा के विवाद्यक का विनिश्चय करने के लिए विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित करना चाहिए था ।

24. साथ ही, हम यह बात भी पूरी तरह से स्पष्ट करना चाहते हैं कि इस मताभिव्यक्ति से यह विधिक प्रतिपादना अधिकथित नहीं कर रहे हैं कि विलंब की माफी की ईप्सा करते हुए आरंभिक प्रक्रम पर आवेदन फाइल किए बिना भी परिवादी को कार्यवाही के किसी भी प्रक्रम पर यह अवसर दिया जा सकता है । जैसा कि हमारे द्वारा पूर्वगामी पैराओं में चर्चा की गई है, हम परिवादी को विलंब की माफी की ईप्सा करते हुए आवेदन फाइल करने का अवसर देने के अप्रतिरोध्य निष्कर्ष पर इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में पहुंचे हैं ।

25. सभी पूर्वोक्त कारणों से, न्याय की प्राप्ति के लिए हम संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हैं और उच्च न्यायालय के दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने वाले आक्षेपित निर्णय को अपास्त करते हैं तथा विचारण न्यायालय के समक्ष चल रही दांडिक कार्यवाहियों को प्रत्यावर्तित करते हैं । अपीलार्थी को विचारण न्यायालय के समक्ष विलंब की माफी के लिए आवेदन फाइल करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है और यदि ऐसा आवेदन फाइल किया जाता है तो विचारण न्यायालय इस पर इसके गुणागुण के आधार पर, इस न्यायालय द्वारा की गई किसी मताभिव्यक्ति से प्रभावित हुए बिना, विचार करने के लिए स्वतंत्र होगा और समुचित आदेश पारित करेगा ।

26. हम श्री हज़ीफा अहमदी, विद्वान् न्याय-मित्र के उनके कुशल सहयोग के लिए कृतज्ञ हैं ।

27. यह अपील उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के साथ मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2014] 4 उम. नि. प. 278

भारत संघ और एक अन्य

बनाम

संजीव वी. देशपांडे

12 अगस्त, 2014

मुख्य न्यायमूर्ति आर. एम. लोढ़ा, न्यायमूर्ति जे. चेलामेश्वर और न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी

स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (1985 का 61) – धारा 8(ग) और अनुसूची-1 [सपठित स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ नियम, 1985 का नियम 53, 63, 64 और अनुसूची-1 तथा ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धारा 80] – अधिनियम की अनुसूची-1 में उल्लिखित स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों से संबंधित कतिपय संक्रियाओं का प्रतिषेध – धारा 8(ग) में

अंतर्विष्ट उक्त प्रतिषेध अधिनियम में दी गई अनुसूची में उल्लिखित स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों पर लागू होता है और यह प्रतिषेध केवल अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों में दी गई अनुसूची में उल्लिखित मनःप्रभावी पदार्थों तक ही सीमित नहीं है ।

ये सभी मामले स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 के उपबंधों के अधीन विभिन्न न्यायालयों में चल रहे अभियोजन से संबंधित हैं । प्रत्येक अभियुक्त के कब्जे में अभिकथित रूप से अधिनियम की अनुसूची में वर्णित कोई-न-कोई मनःप्रभावी पदार्थ पाया गया था । अन्ततः, प्रश्न यह है कि क्या ऐसे व्यक्तियों को, जो अधिनियम के अधीन अपराध कारित करने के अभियुक्त हैं, अधिनियम की धारा 37 में अंतर्विष्ट अनुबंधों को ध्यान में रखते हुए जमानत पर छोड़ा जा सकता है या नहीं । इन मामलों में से कुछ में संबंधित उच्च न्यायालय द्वारा जमानत अनुदत्त की गई और कुछ मामलों में जमानत नामंजूर कर दी गई । ऐसे आदेशों से व्यथित होकर या तो राज्य ने या अभियुक्त ने उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल कीं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 8(ग) में असंदिग्ध रूप से किसी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ का किसी भी रीति में व्यौहार करना प्रतिषिद्ध किया गया है । तथापि, उक्त धारा में ऐसे प्रतिषेध का एक अपवाद भी अंतर्विष्ट है । अपवाद यह है कि किसी स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ का व्यौहार "इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों या निकाले गए आदेशों के उपबंधों द्वारा उपबंधित रीति से और विस्तार तक ही अनुज्ञात है"। दूसरे शब्दों में, स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों का व्यौहार केवल तब अनुज्ञेय है जब ऐसा व्यौहार चिकित्सीय प्रयोजनों या वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिए हो । इसके अतिरिक्त, केवल इस तथ्य से कि चिकित्सीय या वैज्ञानिक प्रयोजन के लिए स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों का व्यौहार अनुज्ञेय है, धारा 8(ग) के अधीन सृजित वर्जना स्वतः समाप्त नहीं हो जाती है । ऐसा व्यौहार अधिनियम, नियमों या तद्धीन निकाले गए आदेशों के उपबंधों द्वारा उपबंधित रीति से और विस्तार तक होना चाहिए । धारा 9 और 10 में क्रमशः केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों को स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के व्यौहार से संबंधित विभिन्न पहलुओं [धारा 8(ग) के अधीन अनुध्यात] को अनुज्ञा देने और विनियमित करने के लिए नियम बनाने के लिए समर्थ बनाया गया है । अधिनियम में स्वापक

ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के व्यौहार से संबंधित विभिन्न क्रियाकलापों को प्रतिषिद्ध करने के लिए नियम बनाना अनुध्यात नहीं है । यह प्रतिषेध पहले से ही धारा 8(ग) में अंतर्विष्ट है । अधिनियम में केवल स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थों के व्यौहार से संबंधित क्रियाकलापों की अनुज्ञा देने और विनियमन करने के लिए नियम बनाना अनुध्यात है । इसलिए, न्यायालय की यह राय है कि विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कायम रखने योग्य नहीं है कि धारा 8 के अधीन अंतर्विष्ट प्रतिषेध उन सभी मनःप्रभावी पदार्थों की बाबत लागू नहीं है जिनका अधिनियम की अनुसूची में तो उल्लेख किया गया है किंतु अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों की अनुसूची-1 में उल्लेख नहीं है । तथापि, न्यायालय के ध्यान में यह लाया गया है कि विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा ऊपर उल्लिखित अनुसार जो निष्कर्ष निकाला गया है, इस न्यायालय द्वारा ऐसे निष्कर्ष का समर्थन किया गया है । यह न्यायालय इस निष्कर्ष से सहमत नहीं है कि नियम, 1985 के नियम 63 में अंतर्विष्ट प्रतिषेध केवल उन स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों को लागू होता है जिनका नियमों की अनुसूची-1 में उल्लेख है न कि उन मनःप्रभावी पदार्थों को जो अधिनियम की अनुसूची में प्रगणित हैं । दुर्भाग्यवश, विद्वान् न्यायाधीशों ने ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचने में धारा 8(ग) की उस आज्ञा को अनदेखा कर दिया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ किसी भी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ का भारत में आयात और भारत से बाहर निर्यात को स्पष्ट शब्दों में प्रतिषिद्ध किया गया है । अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों को ऐसे अधिकार और बाध्यताएं सृजित करने वाले नियम नहीं समझा जा सकता है जो मूल अधिनियम में अंतर्विष्ट अधिकार और बाध्यताओं के प्रतिकूल हों । (पैरा 24, 25, 26, 27, 28 और 29)

नियम 53 से 63, जो अध्याय 7 में हैं, की परीक्षा करने पर न्यायालय की यह राय है कि नियम 53 में धारा 8(ग) में अंतर्विष्ट विस्तृत प्रतिषेध के पहलू, अर्थात् नियमों की अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के भारत में आयात और भारत से बाहर निर्यात पर प्रतिषेध, को दोहराया गया है । तथापि, इसके परंतुक में भारत में आयात और भारत से बाहर निर्यात को अध्याय 6 के उपबंधों के अधीन जारी किए गए आयात प्रमाणपत्र या निर्यात के प्राधिकार के आधार पर समर्थ बनाया गया है । पश्चात्वर्ती नियमों में वे शर्तें जिनके अधीन रहते हुए और अनुसरण की जाने वाली वह प्रक्रिया अनुबंधित हैं जिसके द्वारा स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों का भारत में आयात या भारत से बाहर

निर्यात किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, अधिनियम की धारा 2(xiv) के अधीन दी गई परिभाषा के अनुसार अफीम एक स्वापक ओषधि है जिसका आयात और निर्यात धारा 8(ग) के अधीन प्रतिषिद्ध है । किंतु नियम 54 में राजकीय अफीम कारखाने द्वारा अफीम का आयात किया जाना प्राधिकृत किया गया है । न्यायालय की राय में, नियम 53 का जो अर्थान्वयन किया गया है वह कानूनी निर्वचन के इन स्थिर सिद्धांतों के पूर्णतः प्रतिकूल होगा कि अधीनस्थ विधायन में मूल अधिनियम के प्रतिकूल अनुबंध नहीं किया जा सकता है । नियम, 1985 के अध्याय 6 और 7 के उपबंधों के उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर, न्यायालय की यह राय है कि इन दोनों अध्यायों में उन स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के आयात और निर्यात की अनुज्ञा देने और विनियमित करने के नियम, अध्याय 6 में अनुबद्ध विभिन्न शर्तों और प्रक्रिया के अधीन रहते हुए, अंतर्विष्ट हैं जो नियम, 1985 की अनुसूची में विनिर्दिष्ट से भिन्न हैं । जबकि अध्याय 7 अनन्य रूप से स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के व्यौहार से संबंधित विभिन्न पहलुओं और उन शर्तों के संबंध में है जिनके अधीन रहते हुए ऐसा व्यौहार अनुज्ञात है । न्यायालय की यह राय है कि वास्तव में नियम 53 और 64 दोनों ही क्रमशः अध्याय 6 और 7 की साधारण स्कीम के अपवाद की प्रकृति के हैं जिनमें उन स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों की सूची अंतर्विष्ट है जिनका व्यौहार इन दोनों अध्यायों के अन्य उपबंधों के होते हुए भी किसी रीति में नहीं किया जा सकता है । न्यायालय की यह स्पष्ट राय है कि न तो नियम 53 और न ही नियम 64 स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के व्यौहार को प्रतिषिद्ध करने वाले प्राधिकार का स्रोत है, यह स्रोत धारा 8 है । न्यायालय के निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत मामले में अधिनियम की धारा 80 की विवक्षा का पूर्ण विश्लेषण करने की वास्तव में आवश्यकता नहीं है । केवल यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 आवश्यक रूप से ओषधियों के साधारणतया विनिर्माण, विक्रय, क्रय आदि की विभिन्न संक्रियाओं के संबंध में है जबकि स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 ओषधियों की एक अधिक विनिर्दिष्ट श्रेणी के संबंध में है और इसलिए इस विषय पर एक विशेष विधि है । इसके अतिरिक्त, इस अधिनियम के उपबंध अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अतिरिक्त लागू होते हैं । न्यायालय के उपरोक्त निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, सभी दांडिक अपीलों में आक्षेपित आदेशों की सत्यता पर समुचित संख्या वाले न्यायपीठ द्वारा विचार किए जाने की

आवश्यकता है । तथापि, इस तथ्य को देखते हुए कि इन मामलों में से अधिकांश पुराने मामले हैं (वर्ष 2006 से 2013 के हैं), इसलिए न्यायालय यह उचित समझता है कि इन सभी मामलों को इस निर्णय को ध्यान में रखते हुए समुचित आदेश पारित करने के लिए संबंधित उच्च न्यायालयों को विप्रेषित कर दिया जाए । (पैरा 30, 34, 35 और 36)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2007]	(2007) 1 एस. सी. सी. 335 : **उत्तरांचल राज्य** बनाम **राजेश कुमार गुप्ता** ;	28,29, 30,34
[2004]	(2004) 3 एस. सी. सी. 549 : **सीमाशुल्क कलक्टर, नई दिल्ली** बनाम **अहमदालिया नोदिरा** ;	17
[1995]	(1995) 4 एस. सी. सी. 190 : **भारत संघ** बनाम **थमीशारसी** ।	17

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं. 4741. (इसके साथ 2011 की दांडिक अपील सं. 848, 855 और 876 तथा 2014 की दांडिक अपील सं. 1710, 1711, 1712, 1713, 1714, 1715, 1716 और 1717 की भी सुनवाई की गई ।)

2005 की दांडिक अपील सं. 4741 में मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 7 मार्च, 2006 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

उपस्थित पक्षकारों की ओर से सर्वश्री (सुश्री) पिंकी आनंद, अपर महासालिसिटर, के. राधाकृष्णन्, के. टी. एस. तुलसी, आर. बसंत, ज्येष्ठ अधिवक्तागण और उनके साथ (सुश्री) बीनू टमटा, सुषमा मनचंदा, सुनीता शर्मा (बी. के. प्रसाद की ओर से), सुधीर

पिलानिया, सोमवीर देशवाल, परमीत सक्सेना, विश्व पाल सिंह, सोमेश चन्द्र झा, अमित कुमार, ऋषि मलहोत्रा, रविन्द्र केशवराव अडसुरे, गौरव भार्गव, नीरज गुप्ता, सुशी करंजकर, विनोद एन. नायक, के. एन. राय, यश पाल डींगरा, मुकेश कुमार गिरि, जितेन्द्र कुमार भाटिया, (सुश्री) हेमंतिका वाही, प्रीति भारद्वाज, पूजा सिंह, श्रीकांत एन. टेरडल, डी. महेश बाबू, शंकर चिलार्ज, (सुश्री) आशा गोपालन नायर और सोनिया एस. चिलार्ज

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जे. चेलामेश्वर ने दिया ।

न्या. चेलामेश्वर – विशेष इजाजत याचिकाओं में इजाजत दी गई ।

2. मामलों का यह समूह इस न्यायालय द्वारा यह राय व्यक्त करते हुए किए गए विभिन्न आदेशों के अनुसरण में सूचीबद्ध किया गया है कि इन मामलों पर एक बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार किया जाना चाहिए ।

3. ऐसा पहला आदेश 2007 की दांडिक अपील सं. 644 में किया गया आदेश है । उक्त आदेश द्वारा 2006 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 4976 में इजाजत दी गई थी । यह आदेश निम्नलिखित है :–

> "विद्वान् काउंसेल द्वारा हमारा ध्यान इस न्यायालय के दो विनिश्चयों, अर्थात् सीमा-शुल्क कलक्टर, नई दिल्ली **बनाम** अहमदलिया नादिरा [(2004) 3 एस. सी. सी. 549] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों के विनिश्चय और उत्तरांचल राज्य **बनाम** राजेश कुमार गुप्ता [(2007) 1 एस. सी. सी. 335] वाले मामले में दो न्यायाधीशों के पश्चात्वर्ती विनिश्चय की ओर आकृष्ट किया गया ।
>
> स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी अधिनियम, 1985 की धारा 80

के प्रति भी निर्देश किया गया । यह धारा निम्नलिखित है –

> 'ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के लागू होने का वर्जित न होना – इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंध ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 (1940 का 23) या उसके अधीन बनाए गए नियमों के अतिरिक्त होंगे न कि उसके अल्पीकरण में ।'

हमारी राय में, इस तथ्य को देखते हुए कि धारा 80 के प्रभाव पर विचार किए जाने की आवश्यकता है, इसलिए हम इजाजत देते हैं और रजिस्ट्री को निदेश देते हैं कि मामले को तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष रखने के लिए कागजातों को माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष प्रस्तुत किया जाए ।"

4. शेष मामलों को 2007 की दांडिक अपील सं. 644 से इस आधार पर संलग्न किया गया कि इन सभी मामलों में अंतर्वलित विवाद्यक 2007 की दांडिक अपील सं. 644 में अंतर्वलित विवाद्यक के समान हैं ।

5. ये सभी मामले स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) के उपबंधों के अधीन चल रहे अभियोजन से संबंधित हैं । प्रत्येक अभियुक्त के कब्जे में अभिकथित रूप से अधिनियम की अनुसूची में वर्णित कोई-न-कोई मनःप्रभावी पदार्थ पाया गया था । अन्ततः, प्रश्न यह है कि क्या ऐसे व्यक्तियों को, जो अधिनियम के अधीन अपराध कारित करने के अभियुक्त हैं, अधिनियम की धारा 37 में अंतर्विष्ट अनुबंधों को ध्यान में रखते हुए जमानत पर छोड़ा जा सकता है या नहीं । इन मामलों में से कुछ में संबंधित उच्च न्यायालय द्वारा जमानत अनुदत्त की गई और कुछ मामलों में जमानत नामंजूर कर दी गई । ऐसे आदेशों से व्यथित होकर या तो राज्य ने या अभियुक्त ने ये अपीलें फाइल की हैं ।

6. अधिनियम की धारा 37 में यह अनुबंधित है कि अधिनियम के अधीन दंडनीय सभी अपराध संज्ञेय होंगे । इस धारा में यह भी अनुबंधित है कि :–

> (1) धारा 19, 24, 27क के अधीन अपराध के अभियुक्त व्यक्तियों या 'वाणिज्यिक मात्रा' रखने के अपराध में अंतर्वलित अभियुक्त व्यक्तियों को तब तक जमानत पर निर्मुक्त नहीं किया जाएगा, जब तक कि लोक अभियोजक को जमानत के आवेदन का विरोध करने का अवसर नहीं दिया जाता है ; और

(2) सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जब तक कि न्यायालय का यह समाधान नहीं हो जाता है कि यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि अभियुक्त ऐसे अपराध का दोषी नहीं है । इसके अतिरिक्त, न्यायालय का यह समाधान होना भी आवश्यक है कि ऐसे व्यक्ति द्वारा जमानत पर होने के दौरान कोई अपराध करने की संभावना नहीं है ।

अधिनियम की धारा 37 और धारा 2(viiक) निम्नलिखित प्रकार से हैं :–

"**धारा 37. अपराधों का संज्ञेय और अजमानतीय होना** – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी,–

(क) इस अधिनियम के अधीन दंडनीय प्रत्येक अपराध संज्ञेय होगा ;

(ख) धारा 19 या धारा 24 या धारा 27क के अधीन दंडनीय अपराधों और ऐसे अपराधों, जिनमें वाणिज्यिक मात्रा अंतर्वलित हो, के अभियुक्त किसी भी व्यक्ति को जमानत पर या मुचलके पर तभी निर्मुक्त किया जाएगा जब –

(i) लोक अभियोजक को ऐसी निमुक्ति के लिए किए गए आवेदन का विरोध करने का अवसर दे दिया गया है ; और

(ii) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है वहां न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर होने के दौरान उसके द्वारा कोई अपराध किए जाने की संभावना नहीं है ।

(2) उपधारा (1) के खंड (ख) में विनिर्दिष्ट जमानत मंजूर करने के संबंध में ये परिसीमाएं दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन जमानत मंजूर करने की बाबत परिसीमाओं के अतिरिक्त हैं ।"

"**धारा 2(viiक)**. स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के संबंध में 'वाणिज्यिक मात्रा' से अभिप्रेत ऐसी मात्रा है जो केन्द्रीय

सरकार द्वारा, राजपत्र में, अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट की गई मात्रा से अधिक हो ।"

दूसरे शब्दों में, धारा 37 में अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषिता की उपधारणा, जब तक वह अन्यथा साबित नहीं हो जाता है, के दीर्घावधि से स्थापित सिद्धांत का विचलन किया गया है ।

7. इन मामलों में अंतर्वलित सही विधिक अनिश्चितता को समझने के लिए अधिनियम के सुसंगत उपबंधों का संक्षिप्त पर्यावलोकन तथा ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम, 1940' कहा गया है) की स्कीम को समझना भी आवश्यक है ।

8. इस अधिनियम से पूर्व, कुछ सीमा तक तीन उपनिवेशिक अधिनियमितियों के अधीन अधिनियम की विधायी विषयवस्तु पर कार्यवाही की जाती थी । वे अधिनियमितियां अफीम अधिनियम, 1857, अफीम अधिनियम, 1878 और खतरनाक ओषधि अधिनियम, 1930 हैं । उसके पश्चात्, स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थों के खतरे से निपटने के लिए विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संधियां और प्रोटोकाल आदि अस्तित्व में आए । भारत उन संधियों और प्रोटोकाल आदि में पक्षकार रहा है और उनके अधीन की कई विधिक बाध्यताओं को पूरा किया है । संसद् ने यह राय व्यक्त की कि विद्यमान अधिनियमितियां भारत को अपनी अंतरराष्ट्रीय विधिक बाध्यताओं को पूरा करने के लिए विद्यमान विधि की अपर्याप्तता के अतिरिक्त स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थों द्वारा प्रक्षेपित खतरे से निपटने के लिए अपर्याप्त हैं । इसलिए अधिनियम और तीनों पुराने अधिनियमों को निरस्त कर दिया गया ।

9. अधिनियम में स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थों के बारे में उपबंध हैं । ये दोनों अभिव्यक्तियां अधिनियम में परिभाषित की गई हैं । धारा 2(xiv) में 'स्वापक ओषधि' को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है :–

"'स्वापक ओषधि' से कोका की पत्ती, कैनेबिस (हैम्प), अफीम, पोस्त तृण अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत सभी विनिर्मित ओषधियां हैं ।"

10. स्वापक ओषधि की परिभाषा में आने वाले 'कोका की पत्ती', 'कैनेबिस', 'अफीम' और 'पोस्त तृण' शब्दों को भी क्रमशः धारा 2(vi),

2(iii), 2(xv) और 2(xviii) में परिभाषित किया गया है ।

11. धारा 8 में किसी व्यक्ति द्वारा किसी कोका के पौधे, अफीम पोस्त या कैनेबिस पौधे की खेती को प्रतिषिद्ध करने के साथ-साथ कोका के पौधे के किसी भाग का संग्रह करना भी प्रतिषिद्ध किया गया है । इस धारा में यह भी अनुबंधित है कि कोई व्यक्ति किसी स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ का उत्पादन, विनिर्माण, कब्जा, विक्रय, क्रय, परिवहन, भांडागारण, उपयोग, उपभोग नहीं करेगा अथवा किसी स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ के न तो अंतरराज्यिक व्यापार और न ही अंतरराष्ट्रीय व्यापार में लिप्त होगा (इसमें आगे इन सभी प्रतिषिद्ध क्रियाकलापों को सामूहिक रूप में 'व्यौहार करना' कहा गया है) । धारा 8 में ही ऊपर यथा वर्णित साधारण प्रतिषेध के कतिपय अपवाद अंतर्विष्ट हैं । धारा 8 निम्नलिखित प्रकार से है :–

> "**धारा 8. कुछ संक्रियाओं का प्रतिषेध –** कोई व्यक्ति –
>
> (क) किसी कोका के पौधे की खेती या कोका के पौधे के किसी भाग का संग्रह ; या
>
> (ख) अफीम पोस्त या किसी कैनेबिस के पौधे की खेती ; या
>
> (ग) किसी स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ का उत्पादन, विनिर्माण, कब्जा, विक्रय, क्रय, परिवहन, भांडागारण, उपयोग, उपभोग, अंतरराज्यिक आयात, अंतरराज्यिक निर्यात, भारत में आयात, भारत से बाहर निर्यात या यानांतरण,
>
> चिकित्सीय या वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिए और इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों या निकाले गए आदेशों के उपबंधों द्वारा उपबंधित रीति से और विस्तार तक ही और ऐसी किसी दशा में जहां ऐसे किसी उपबंध में अनुज्ञप्ति, अनुज्ञापत्र, या प्राधिकार के रूप में कोई अपेक्षा अधिरोपित की गई है, वहां ऐसी अनुज्ञप्ति, अनुज्ञापत्र या प्राधिकार के निबंधनों और शर्तों के अनुसार ही करेगा अन्यथा नहीं :
>
> परंतु इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, गांजा के उत्पादन के लिए कैनेबिस के पौधे की खेती या चिकित्सीय और वैज्ञानिक

प्रयोजनों से भिन्न किसी प्रयोजन के लिए गांजा के उत्पादन, कब्जे, उपयोग, उपभोग, क्रय, विक्रय, परिवहन, भांडागारण, अंतरराज्यिक आयात और अंतरराज्यिक निर्यात के विरुद्ध प्रतिषेध केवल उस तारीख से प्रभावी होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे :

परंतु यह और कि इस धारा की कोई बात आलंकारिक प्रयोजनों के लिए पोस्ततृण के निर्यात को लागू नहीं होगी ।'

12. धारा 9 और 10 में केन्द्रीय सरकार और संबंधित राज्य सरकारों को धारा 8 में अंतर्विष्ट प्रतिषेध के विभिन्न पहलुओं के संबंध में अनुज्ञा देने और विनियमित करने हेतु नियम बनाने के लिए प्राधिकृत किया गया है ।

13. अधिनियम के अध्याय 4 में विभिन्न अपराध और उक्त अपराधों के लिए शास्तियां अंतर्विष्ट हैं ।

14. चूंकि हमारे समक्ष सभी मामले मनःप्रभावी पदार्थों के संबंध में अधिनियम का कुछ-न-कुछ उल्लंघन करने के लिए चल रहे अभियोजन के मामले हैं, इसलिए धारा 22 से 24 हमारी जांच के लिए सुसंगत हैं ।

15. धारा 22 में धारा 8(ग) के अधीन प्रतिषिद्ध विभिन्न क्रियाकलापों के अतिक्रमण के लिए दंड विहित किया गया है । मामले में अंतर्वलित मनःप्रभावी पदार्थ की मात्रा पर निर्भर करते हुए, विहित दंड भी अलग-अलग है । यदि मात्रा अल्प है, तो दंड छह मास तक का है । अधिनियम की धारा 22 निम्नलिखित प्रकार से हैं :–

"**धारा 22. मनःप्रभावी पदार्थों के संबंध में उल्लंघन के लिए दंड** – जो कोई, इस अधिनियम के किसी उपबंध या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम या निकाले गए किसी आदेश या गई अनुज्ञप्ति की शर्त के उल्लंघन में किसी मनःप्रभावी पदार्थ का विनिर्माण, कब्जा, विक्रय, क्रय, अंतरराज्यिक आयात, अंतरराज्यिक निर्यात, या उपयोग करेगा वह, –

(क) जहां ऐसे उल्लंघन में अल्प मात्रा अंतर्वलित है, वहां, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो दस हजार रुपए तक का हो सकेगा या दोनों से, दंडनीय होगा ;

(ख) जहां ऐसे उल्लंघन में वाणिज्यिक मात्रा से कम किंतु

अल्प मात्रा से अधिक मात्रा अंतर्वलित है, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ;

(ग) जहां ऐसे उल्लंघन में वाणिज्यिक मात्रा अंतर्वलित है, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो बीस वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी, एक लाख रुपए से कम का नहीं होगा किंतु दो लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा :

परंतु न्यायालय, ऐसे कारणों से, जो निर्णय में लेखबद्ध किए जाएंगे, दो लाख रुपए से अधिक का जुर्माना अधिरोपित कर सकेगा ।"

'अल्प मात्रा' अभिव्यक्ति को धारा 2(xxiiiक) में परिभाषित किया गया है । यदि मात्रा धारा 2(viiक) के अधीन यथा परिभाषित वाणिज्यिक मात्रा से कम है, किंतु अल्प मात्रा से अधिक है तो दंड जुर्माने के अतिरिक्त दस वर्ष तक का कठोर कारावास हो सकेगा । जब मात्रा वाणिज्यिक मात्रा से अधिक हो, तो दंड बीस वर्ष तक का हो सकेगा और जुर्माना दो लाख रुपए तक का हो सकेगा और विशेष कारणों से और भी अधिक हो सकेगा । धारा 2(xxiiiक) निम्नलिखित प्रकार से हैं :–

"**धारा 2(xxiiiक)**. स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के संबंध में 'अल्प मात्रा' से अभिप्रेत ऐसी मात्रा है जो केन्द्रीय सरकार द्वारा, राजपत्र में, अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट मात्रा से कम है ।"

धारा 23 में स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के अवैध रूप से भारत में आयात या भारत से बाहर निर्यात के लिए दंड विहित किया गया है । एक बार फिर, अपराध में अंतर्वलित विनिषिद्ध पदार्थ की मात्रा पर निर्भर करते हुए दंड अलग-अलग है । अधिनियम की धारा 23 निम्नलिखित प्रकार से हैं :–

"**धारा 23. स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के अवैध रूप से भारत में आयात, भारत से निर्यात या यानांतरण के लिए दंड –** जो कोई, इस अधिनियम के किसी उपबंध या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम या निकाले गए किसी आदेश या दी गई अनुज्ञप्ति या अनुज्ञापत्र या जारी किए गए प्रमाणपत्र या प्राधिकर के उल्लंघन में किसी स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ का भारत में आयात या

भारत से निर्यात करेगा या यानांतरण करेगा, वह, –

(क) जहां ऐसे उल्लंघन में अल्प मात्रा अंतर्वलित है, वहां, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो दस हजार रुपए तक का हो सकेगा या दोनों से, दंडनीय होगा ;

(ख) जहां ऐसे उल्लंघन में वाणिज्यिक मात्रा से कम किंतु अल्प मात्रा से अधिक मात्रा अंतर्वलित है, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ;

(ग) जहां ऐसे उल्लंघन में वाणिज्यिक मात्रा अंतर्वलित है, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो बीस वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी, एक लाख रुपए से कम का नहीं होगा किंतु दो लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा :

परंतु न्यायालय, ऐसे कारणों से, जो निर्णय में लेखबद्ध किए जाएंगे, दो लाख रुपए से अधिक का जुर्माना अधिरोपित कर सकेगा ।"

प्रस्तुत मामले की तथ्यात्मक स्थिति के संदर्भ में धारा 24 की परिधि की परीक्षा करना आवश्यक नहीं है ।

16. धारा 35 में यह अनुबंधित है कि इस अधिनियम के अधीन अपराध के किसी अभियोजन में, जिसमें अभियुक्त की आपराधिक मानसिक दशा अपेक्षित है, अपराध का विचारण कर रहे न्यायालय के लिए अभियुक्त की ऐसी मानसिक दशा की उपधारणा करना आज्ञापक है, यद्यपि अभियुक्त यह साबित करने के लिए स्वतंत्र है कि उसकी ऐसी मानसिक दशा नहीं थी । अधिनियम की धारा 35 निम्नलिखित प्रकार से हैं :–

"**धारा 35. आपराधिक मानसिक दशा की उपधारणा** – (1) इस अधिनियम के अधीन किसी ऐसे अपराध के किसी अभियोजन में, जिसमें अभियुक्त की आपराधिक मानसिक दशा अपेक्षित है, न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि अभियुक्त की ऐसी मानसिक दशा है किंतु अभियुक्त के लिए यह तथ्य साबित करना एक प्रतिरक्षा होगी कि उस अभियोजन में अपराध के रूप में आरोपित कार्य के बारे में उसकी वैसी मानसिक दशा नहीं थी ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा में, 'आपराधिक मानसिक दशा' के अंतर्गत आशय, हेतु, किसी तथ्य का ज्ञान और किसी में विश्वास या उस पर विश्वास करने का कारण है ।

(2) इस धारा के प्रयोजन के लिए कोई तथ्य केवल तभी साबित किया गया कहा जाता है जब न्यायालय युक्तियुक्त संदेह से परे यह विश्वास करे कि वह तथ्य विद्यमान है और केवल इस कारण नहीं कि उसकी विद्यमानता अधिसंभाव्यता की प्रबलता के कारण सिद्ध होती है ।'

17. **भारत संघ** बनाम **थमीशारसी**[1] और **सीमाशुल्क कलक्टर, नई दिल्ली** बनाम **अहमदालिया नोदिरा**[2] वाले दो पूर्ववर्ती विनिश्चयों में इस न्यायालय द्वारा धारा 37 की व्याप्ति और परिधि पर विचार किया गया था । इन दो निर्णयों में से पश्चात्वर्ती निर्णय में पूर्ववर्ती विनिश्चय की अवेक्षा करने के पश्चात् धारा 37 के संदर्भ को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया :–

"6. जैसा कि इस न्यायालय द्वारा भारत संघ **बनाम** थमीशारसी वाले मामले में मत व्यक्त किया गया है, धारा 37 की उपधारा (1) के खंड (ख) में जमानत मंजूर करने के संबंध में जो परिसीमाएं अधिरोपित की गई हैं वे संहिता के अधीन परिसीमाओं के अतिरिक्त हैं । ये दो परिसीमाएं हैं – (1) लोक अभियोजक को जमानत के आवेदन का विरोध करने का अवसर देना, और (2) न्यायालय का यह समाधान होना कि यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि अभियुक्त ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर होने के दौरान उसके द्वारा कोई अपराध किए जाने की संभावना नहीं है ।

7. जमानत मंजूर करने की बाबत परिसीमाएं केवल तब लागू होती हैं जब जमानत मंजूर करने का प्रश्न गुणागुण के आधार पर उद्भूत होता है । लोक अभियोजक को अवसर प्रदान करने के अतिरिक्त, जहां तक वर्तमान अभियुक्त-प्रत्यर्थी का संबंध है, दो अन्य शर्तें जिनकी वस्तुतः सुसंगतता है, वह हैं – न्यायालय का यह समाधान कि यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि अभियुक्त अभिकथित अपराध का दोषी नहीं है और यह कि उसके द्वारा जमानत

---

[1] (1995) 4 एस. सी. सी. 190.

[2] (2004) 3 एस. सी. सी. 549.

पर होने के दौरान कोई अपराध किए जाने की संभावना नहीं है । ये शर्तें संचयी हैं न कि अनुकल्पी । अभियुक्त के दोषी न होने के संबंध में अनुध्यात समाधान युक्तियुक्त आधारों पर आधारित होना चाहिए । 'युक्तियुक्त आधार' अभिव्यक्ति से अभिप्रेत प्रथमदृष्ट्या आधारों से कुछ अधिक आधारों का होना है । इस धारा में यह विश्वास करने के सारभूत अधिसंभाव्य कारणों को अनुध्यात किया गया है कि अभियुक्त अभिकथित अपराध का दोषी नहीं है ....।"

18. भारत सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 9 और 76 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए विभिन्न प्रकार के नियम बनाए गए हैं । हमारी जांच के प्रयोजन के लिए सुसंगत स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ नियम, 1985 (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् "नियम, 1985" कहा गया है) हैं । विभिन्न अध्यायों और नियमों में स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के व्यौहार के नियंत्रण और विनियमन के विभिन्न पहलुओं के लिए उपबंध किए गए हैं । नियमों के अध्याय 3 की विषयवस्तु अफीम पोस्त की खेती करना और अफीम तथा पोस्त तृण का उत्पादन करना, अध्याय 4 की विषयवस्तु अफीम का विनिर्माण, विक्रय और निर्यात, अध्याय 5 की विषयवस्तु विनिर्मित ओषधियां, अध्याय 6 की विषयवस्तु स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों का भारत में आयात, भारत से बाहर निर्यात और यानांतरण है । इन नियमों के नियम 53 में नियमों की अनुसूची 1 में विनिर्दिष्ट स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों का भारत में आयात, भारत से बाहर निर्यात दोनों को ही वस्तुतः अध्याय 7क के उपबंधों के अधीन रहते हुए प्रतिषिद्ध किया गया है । नियम 53क में नियमों की अनुसूची-2 में विनिर्दिष्ट स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों का अनुसूची में विनिर्दिष्ट कतिपय देशों और क्षेत्रों को निर्यात करना प्रतिषिद्ध किया गया है । इस अध्याय के और अधिक ब्यौरे हमारे प्रयोजन के लिए आवश्यक नहीं हैं । 'विनिर्मित ओषधि' को धारा 2(xi) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"2(xi). 'विनिर्मित ओषधि' से अभिप्रेत है –

(क) कोका के सभी व्युत्पाद, ओषधि कैनेबिस, अफीम के व्युत्पाद और पोस्त तृण सांद्र ;

(ख) ऐसा कोई अन्य स्वापक पदार्थ या निर्मिति, जिसको केन्द्रीय सरकार, उसकी प्रकृति के बारे में उपलब्ध जानकारी को या

किसी अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन के अधीन किसी विनिश्चय को, यदि कोई हो, ध्यान में रखते हुए, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, विनिर्मित ओषधि घोषित करे,

किंतु इसके अंतर्गत ऐसा कोई स्वापक पदार्थ या निर्मिति नहीं है जिससे केन्द्रीय सरकार, उसकी प्रकृति के बारे में उपलब्ध जानकारी को या किसी अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन के अधीन उसकी प्रकृति के या किसी विनिश्चय के बारे में उपलब्ध जानकारी को ध्यान में रखते हुए, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, विनिर्मित ओषधि न घोषित करे ।"

19. अध्याय 7 की विषयवस्तु मनःप्रभावी पदार्थ है । नियम 64 में नियमों की अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट सभी प्रकार के मनःप्रभावी पदार्थों का व्यौहार करने के लिए अधिनियम की धारा 8(ग) के अधीन विनिर्दिष्ट प्रत्येक प्रकार के क्रियाकलाप को प्रतिषिद्ध किया गया है । नियम 64 निम्नलिखित रूप में है :–

*"कोई भी व्यक्ति अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट किसी भी प्रकार के मनःप्रभावी पदार्थ का विनिर्माण, कब्जा, परिवहन, अंतरराज्यिक आयात अंतरराज्यिक निर्यात, क्रय, विक्रय, उपभोग या उपयोग नहीं करेगा ।"

दूसरे शब्दों में, नियम 64 में अधिनियम की अनुसूची-1 में वर्णित कुछ मनःप्रभावी पदार्थों के प्रति निर्देश करते हुए अधिनियम की धारा 8(ग) के अधीन अंतर्विष्ट प्रतिषेध को दोहराया गया है ।

20. जबकि नियम 65 में यह अनुबंधित है कि नियमों की अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट मनःप्रभावी पदार्थों से भिन्न मनःप्रभावी पदार्थ नियम 65 के अधीन विनिर्दिष्ट परिसीमा के अधीन रहते हुए विनिर्मित किए जा सकते हैं । दूसरे शब्दों में, धारा 8(ग) के अधीन प्रतिषेध के होते हुए भी, केन्द्रीय सरकार धारा 9(1)(क)(vi) के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए नियमों की अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट मनःप्रभावी पदार्थों से भिन्न मनःप्रभावी पदार्थों का विनिर्माण करने की अनुज्ञा देती है ।

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"No person shall manufacture, possess, transport, import inter-State, export inter-State, sell, purchase, consume or use any of the psychotropic substances specified in Schedule-1."

नियम 65क में यह अनुबंधित है कि –

> *"कोई भी व्यक्ति किसी मनःप्रभावी पदार्थ का ओषधि और प्रसाधन सामग्री नियम, 1945 के अनुसार के सिवाय कब्जा, क्रय, विक्रय, उपभोग या उपयोग नहीं करेगा ।"

स्पष्ट तौर पर, उक्त नियम केवल उन मनःप्रभावी पदार्थों पर लागू होता है जो नियमों की अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट से भिन्न हैं ।

नियम 66 में यह अनुबंधित है कि –

> **"कोई भी व्यक्ति किसी मनःप्रभावी पदार्थ का कब्जा नियम, 1945 के अंतर्गत आने वाले किन्हीं प्रयोजनों के लिए तब तक नहीं रखेगा जब तक कि वह इन नियमों के अधीन उक्त किन्हीं प्रयोजनों के लिए ऐसे पदार्थ का कब्जा रखने के लिए विधिपूर्वक प्राधिकृत न हो ।"

नियम, 1945 के प्रति निर्देश, स्वीकृततः, ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के अधीन बनाए गए ओषधि और प्रसाधन सामग्री नियम, 1945 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "नियम, 1945" कहा गया है) के प्रति निर्देश है ।

21. विद्वान् अपर महासालिसिटर सुश्री पिंकी आनंद द्वारा यह दलील दी गई कि मुम्बई उच्च न्यायालय ने दो पूर्ववर्ती विनिश्चयों (एक दिल्ली उच्च न्यायालय और दूसरे पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय) का अनुसरण करते हुए अपने निर्णय में, जोकि 2006 की विशेष इजाजत याचिका सं. 5714 में आक्षेपित है, यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "38. जहां तक वर्तमान मामले में दिए गए मनःप्रभावी पदार्थों का संबंध है, उनसे संबंधित संक्रियाएं इसलिए अनुज्ञात हैं क्योंकि नियमों की अनुसूची-1 में इन्हें सम्मिलित ही नहीं किया गया है । इस बात की कोई

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

> "No person shall possess, sell, purchase, consume or use any of the psychotropic substances except in accordance with the Drugs and Cosmetics Rules, 1945."

> **"No person shall possess any psychotropic substance for any of the purposes coverd by the 1945 Rules, unless he is lawfully authorized to possess such substance for any of the said purposes under these rules."

> सुसंगतता नहीं है कि ये पदार्थ अधिनियम की अनुसूची में सम्मिलित हैं, क्योंकि न्यायालय को सभी बातों अर्थात् अधिनियम, तद्धीन बनाए गए नियमों और निकाले गए आदेशों पर एकसाथ और सामंजस्यपूर्ण रीति में विचार करना चाहिए । यह सुस्थिर है कि जो पदार्थ मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की अनुसूची में सम्मिलित है किंतु यह नियमों की अनुसूची-1 में सम्मिलित नहीं है, तब यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 8 के अंतर्गत आने वाली संक्रियाएं अधिनियम के उपबंधों की उल्लंघनकारी हैं और इसलिए दंडनीय हैं । यही कारण है कि इन उपबंधों का दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा और इससे पूर्व पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा निर्वचन किया गया । उनके दृष्टिकोणों के प्रति मेरी सादर सहमति है ।'

विद्वान् अपर महासालिसिटर ने यह दलील दी कि अधिनियम की धारा 8(ग) की स्पष्ट भाषा को देखने पर ऐसा निष्कर्ष पूरी तरह से अनुचित है ।

22. इन मामलों के समूह में के कुछ अभियुक्तों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री के. टी. एस. तुलसी ने यह दलील दी कि अधिनियम, 1940 या तद्धीन बनाए गए नियमों के अधीन किसी प्राधिकार के अनुसरण में तथा किसी विशिष्ट मनःप्रभावी पदार्थ (अभियुक्त के कब्जे में पाए गए) का अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों की अनुसूची-1 में उल्लेख न होने से कब्जे में पाए गए उस मनःप्रभावी पदार्थ पर अधिनियम की प्रयोज्यता अपवर्जित हो जाती है ।

23. उपरोक्त दलीलों की पृष्ठभूमि में मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए इस निष्कर्ष की वैधता को विनिश्चित किया जाना अपेक्षित है कि नियमों की अनुसूची-1 में किसी विशिष्ट मनःप्रभावी पदार्थ का उल्लेख न होने से धारा 8 की प्रयोज्यता इस तथ्य के होते हुए कि ऐसी ओषधि अधिनियम की अनुसूची में सम्मिलित है, अपवर्जित हो जाती है ।

24. इससे पूर्व कि हम विभिन्न दलीलों की सत्यता की परीक्षा करें, हम धारा 8(ग) का विश्लेषण करना और उसकी सही व्याप्ति और परिधि का पता लगाना उचित समझते हैं । धारा 8(ग) में असंदिग्ध रूप से किसी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ का किसी भी रीति में व्यौहार करना प्रतिषिद्ध किया गया है । तथापि, उक्त धारा में ऐसे प्रतिषेध का एक अपवाद भी अंतर्विष्ट है, जो निम्नलिखित है :–

"**धारा 8. कुछ संक्रियाओं का प्रतिषेध** – कोई व्यक्ति –

* * *

चिकित्सीय या वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिए और इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों या निकाले गए आदेशों के उपबंधों द्वारा उपबंधित रीति से और विस्तार तक ही और ऐसी किसी दशा में जहां ऐसे किसी उपबंध में अनुज्ञप्ति, अनुज्ञापत्र, या प्राधिकार के रूप में कोई अपेक्षा अधिरोपित की गई है, वहां ऐसी अनुज्ञप्ति, अनुज्ञापत्र या प्राधिकार के निबंधनों और शर्तों के अनुसार ही करेगा अन्यथा नहीं ।"

अपवाद यह है कि किसी स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ का व्यौहार 'इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों या निकाले गए आदेशों के उपबंधों द्वारा उपबंधित रीति से और विस्तार तक ही अनुज्ञात है' ।

25. दूसरे शब्दों में, स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों का व्यौहार केवल तब अनुज्ञेय है जब ऐसा व्यौहार चिकित्सीय प्रयोजनों या वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिए हो । इसके अतिरिक्त, केवल इस तथ्य से कि चिकित्सीय या वैज्ञानिक प्रयोजन के लिए स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों का व्यौहार अनुज्ञेय है, धारा 8(ग) के अधीन सृजित वर्जना स्वतः समाप्त नहीं हो जाती है । ऐसा व्यौहार अधिनियम, नियमों या तद्धीन निकाले गए आदेशों के उपबंधों द्वारा उपबंधित रीति से और विस्तार तक होना चाहिए । धारा 9 और 10 में क्रमशः केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों को स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के व्यौहार से संबंधित विभिन्न पहलुओं [धारा 8(ग) के अधीन अनुध्यात] को **अनुज्ञा देने** और **विनियमित करने** के लिए नियम बनाने के लिए समर्थ बनाया गया है । अधिनियम की धारा 9 और 10 निम्नलिखित प्रकार से हैं :–

"**धारा 9. अनुज्ञा देने, नियंत्रण और विनियमन करने की केन्द्रीय सरकार की शक्ति** – (1) धारा 8 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, केन्द्रीय सरकार, नियमों द्वारा –

(क) निम्नलिखित के लिए अनुज्ञा दे सकेगी और उनका विनियमन कर सकेगी –

(i) से (v) * * * *

(vi) मनःप्रभावी पदार्थों का विनिर्माण, कब्जा,

परिवहन, अन्तरराज्यिक आयात, अंतरराज्यिक निर्यात, विक्रय, क्रय उपभोग या उपयोग ;

* * *

"**धारा 10. अनुज्ञा देने, नियंत्रण और विनियमन करने की राज्य सरकार की शक्ति** – (1) धारा 8 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य सरकार, नियमों द्वारा –

(क) निम्नलिखित के लिए अनुज्ञा दे सकेगी और उनका विनियमन कर सकेगी –

* * *"

26. अधिनियम में स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के व्यौहार से संबंधित विभिन्न क्रियाकलापों को प्रतिषिद्ध करने के लिए नियम बनाना अनुध्यात नहीं है । यह प्रतिषेध पहले से ही धारा 8(ग) में अंतर्विष्ट है । अधिनियम में केवल स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थों के व्यौहार से संबंधित क्रियाकलापों की अनुज्ञा देने और विनियमन करने के लिए नियम बनाना अनुध्यात है ।

27. इसलिए, हमारी यह राय है कि विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कायम रखने योग्य नहीं है कि धारा 8 के अधीन अंतर्विष्ट प्रतिषेध उन सभी मनःप्रभावी पदार्थों की बाबत लागू नहीं है जिनका अधिनियम की अनुसूची में तो उल्लेख किया गया है किंतु अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों की अनुसूची-1 में उल्लेख नहीं है ।

28. तथापि, हमारे ध्यान में यह लाया गया है कि विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा ऊपर उल्लिखित अनुसार जो निष्कर्ष निकाला गया है, **उत्तरांचल राज्य** बनाम **राजेश कुमार गुप्ता**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा ऐसे निष्कर्ष का समर्थन किया गया है । पैरा 19 में यह अभिनिर्धारित किया गया है :–

"19. हमारे ध्यान में यह नहीं लाया गया है कि अधिनियम, 1985 में विनिषिद्ध पदार्थ के कब्जे की रीति और विस्तार का उपबंध किया गया है । अधिनियम, 1985 की धारा 9 सपठित इसकी धारा 76 के अधीन बनाए गए नियमों में, तथापि, अन्य बातों के साथ-साथ

[1] (2007) 1 एस. सी. सी. 335.

विनिषिद्ध पदार्थों के उत्पादन, विनिर्माण, कब्जे, क्रय, विक्रय, परिवहन आदि की रीति और विस्तार दोनों के बारे में उपबंध किया गया है । नियम, 1985 के अध्याय 6 में स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के आयात, निर्यात और यानांतरण के बारे में उपबंध किया गया है । नियम 53 में वे साधारण प्रतिषेध अंतर्विष्ट हैं जिनके निबंधनों के अनुसार इससे संलग्न अनुसूची में विनिर्दिष्ट स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों का आयात और भारत से बाहर निर्यात प्रतिषिद्ध है । तथापि, ऐसा प्रतिषेध उक्त अध्याय के अन्य उपबंधों के अध्यधीन है । नियम 63 में, जिसकी ओर हमारा ध्यान विनिर्दिष्ट तौर पर आकृष्ट किया गया है, डाकघर पेटी के माध्यम से परेषणों के आयात और निर्यात को प्रतिषिद्ध किया गया है किंतु नियम 53 में अंतर्विष्ट साधारण प्रतिषेध को ध्यान में रखते हुए अवश्य यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि यह प्रतिषेध केवल उन स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों पर लागू होता है जो नियमों की अनुसूची-1 में उल्लिखित हैं न कि अधिनियम, 1985 के अधीन अनुसूची में उल्लिखित हैं । इसी प्रकार, अध्याय 7 में मनःप्रभावी पदार्थों के बारे में उपबंध हैं । इस प्रकार, नियम 53 और 64 में एक जाति अंतर्विष्ट है और इसका अनुसरण करते हुए उक्त अध्याय के अधीन इसकी प्रजातियां अंतर्विष्ट हैं । ऐसा हम इस तथ्य को देखते हुए कह सकते हैं कि नियम 64 में अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट मनःप्रभावी पदार्थों के विक्रय, क्रय, उपभोग या उपयोग की बाबत साधारण प्रतिषेध का उपबंध हैं, जबकि नियम 65 में मनःप्रभावी पदार्थों के विनिर्माण को प्रतिषिद्ध किया गया है, नियम 66 में मनःप्रभावी पदार्थों के कब्जे आदि को प्रतिषिद्ध किया गया है और नियम 67 में इनके परिवहन को प्रतिषिद्ध किया गया है । नियम 67क में चिकित्सीय और वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिए विशेष उपबंध किए गए हैं ।"

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है)

29. हम इस निष्कर्ष (**राजेश कुमार गुप्ता** उपर्युक्त वाले मामले में निकाले गए) से सहमत नहीं हैं कि नियम, 1985 के नियम 63 में अंतर्विष्ट प्रतिषेध केवल उन स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों को लागू होता है जिनका नियमों की अनुसूची-1 में उल्लेख है न कि उन मनःप्रभावी पदार्थों को जो अधिनियम की अनुसूची में प्रगणित हैं । **राजेश कुमार गुप्ता** (उपर्युक्त) वाले मामले में ऐसा निष्कर्ष इस समझ के आधार पर निकाला

गया था कि नियम 53 (नियमों की अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थों का भारत में आयात और भारत से बाहर निर्यात पर प्रतिषेध) ऐसे प्रतिषेध के प्राधिकार का स्रोत है । ऐसा निष्कर्ष इस तथ्य के आधार पर निकाला गया था कि अध्याय में अंतर्विष्ट अन्य नियमों में उन कतिपय स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों का भारत में आयात और भारत से बाहर निर्यात अनुज्ञात है जो नियमों की अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट से भिन्न हैं । दुर्भाग्यवश, विद्वान् न्यायाधीशों ने ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचने में धारा 8(ग) की आज्ञा को अनदेखा कर दिया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ किसी भी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ का भारत में आयात और भारत से बाहर निर्यात को स्पष्ट शब्दों में प्रतिषिद्ध किया गया है । अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों को ऐसे अधिकार और बाध्यताएं सृजित करने वाले नियम नहीं समझा जा सकता है जो मूल अधिनियम में अंतर्विष्ट अधिकार और बाध्यताओं के प्रतिकूल हों ।

नियम 63 निम्नलिखित प्रकार से है :–

> *"**63. किसी डाकघर पेटी, आदि के माध्यम से परेषणों के आयात और निर्यात पर प्रतिषेध** – किसी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ के परेषणों का किसी डाकघर पेटी या किसी बैंक के माध्यम से आयात या निर्यात प्रतिषिद्ध है ।"

30. नियम 53 से 63, जो अध्याय 7 में हैं, की परीक्षा करने पर हमारी यह राय है कि नियम 53 में धारा 8(ग) में अंतर्विष्ट विस्तृत प्रतिषेध के पहलू, अर्थात् नियमों की अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के भारत में आयात और भारत से बाहर निर्यात पर प्रतिषेध, को दोहराया गया है । तथापि, इसके परंतुक में भारत में आयात और भारत से बाहर निर्यात को अध्याय 6 के उपबंधों के अधीन जारी किए गए आयात प्रमाणपत्र या निर्यात के प्राधिकार के आधार पर समर्थ बनाया गया है । नियम 53 निम्नलिखित प्रकार से है :–

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है –

> "**63. Prohibition of import and export of consignments through a post office box, etc. –** The import or export of consignments of any narcotic drugs or psychotropic substance through a post office box or through a bank is prohibited."

*"**53. साधारण प्रतिषेध –** इस अध्याय के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थों का भारत में आयात और भारत से बाहर निर्यात प्रतिषिद्ध है :

परंतु इस नियम की कोई बात वहां लागू नहीं होगी यदि ओषधि पदार्थ का भारत में आयात और भारत से बाहर निर्यात इस अध्याय के उपबंध के अधीन जारी किए गए आयात प्रमाणपत्र या निर्यात करने के प्राधिकार के अधीन और अध्याय 7क में वर्णित प्रयोजन के लिए किया जाता है ।"

पश्चात्वर्ती नियमों में वे शर्तें जिनके अधीन रहते हुए और अनुसरण की जाने वाली वह प्रक्रिया अनुबंधित हैं जिसके द्वारा स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों का भारत में आयात या भारत से बाहर निर्यात किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, अधिनियम की धारा 2(xiv) के अधीन दी गई परिभाषा के अनुसार अफीम एक स्वापक ओषधि है जिसका आयात और निर्यात धारा 8(ग) के अधीन प्रतिषिद्ध है । किंतु नियम 54 में राजकीय अफीम कारखाने द्वारा अफीम का आयात किया जाना प्राधिकृत किया गया है । हमारी राय में, **राजेश कुमार गुप्ता** (उपरोक्त) वाले मामले में नियम 53 का जो अर्थान्वयन किया गया है वह कानूनी निर्वचन के इन स्थिर सिद्धांतों के पूर्णतः प्रतिकूल होगा कि अधीनस्थ विधायन में मूल अधिनियम के प्रतिकूल अनुबंध नहीं किया जा सकता है ।

नियम 54 निम्नलिखित प्रकार से है :–

""**54. अफीम का आयात, आदि –** (i) अफीम, पोस्त तृण का सांद्रण, और

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"**53. General prohibition** – Subject to the other provisions of this Chapter, the import into and export out of India of the narcotic drugs or psychotropic substances specified in Schedule 1 is prohibited :

Provided that nothing in this rule shall apply in case the drug substance is imported into our exported out of India subject to an import certificate or export authorization issued under the provision of this Chapter and for the purpose mentioned in Chapter VIIA. "

""**54. Import of opium, etc.–** The import of – (i) opium, concentrate of poppy straw, and

(ii) मार्फीन, कोडीन, थिबेन और उनके लवणों का आयात राजकीय अफीम कारखाने को छोड़कर प्रतिषिद्ध है ;

परंतु इस नियम की कोई बात सरकार द्वारा अधिसूचित विनिर्माताओं द्वारा निर्यात किए जाने वाले उत्पादों के विनिर्माण में प्रयोग के लिए मार्फीन, कोडीन, थिबेन और उनके लवणों के आयात पर या आयातकर्ता द्वारा विश्लेषण के प्रयोजनों के लिए एक कलेंडर वर्ष के दौरान कुल एक किलोग्राम से अनधिक मार्फीन, कोडीन, थिबेन और उनके लवणों की अल्प मात्रा का नियम 55 के अधीन प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात् और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए जो प्ररूप 4क में जारी किए गए आयात प्रमाणपत्र में विनिर्दिष्ट की जाएं, के आयात पर लागू नहीं होगी ।"

31. अध्याय 7 मनःप्रभावी पदार्थों के संबंध में है । निस्संदेह, नियम 64 में फिर एक बार अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट मनःप्रभावी पदार्थों की विभिन्न संक्रियाओं को, भारत में आयात या भारत से बाहर निर्यात को छोड़कर, तात्पर्यित रूप से प्रतिषिद्ध किया गया है और इसका स्पष्ट कारण यह है कि आयात और निर्यात की संक्रियाएं पहले ही नियम 53 के अंतर्गत आती हैं । नियम 64 इस प्रकार है :–

*"**नियम 64. साधारण प्रतिषेध** – कोई व्यक्ति अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट किसी मनःप्रभावी पदार्थ का विनिर्माण, कब्जा, परिवहन,

---

(ii) morphine, codeine, thebaine, and their salts is prohibited save by the Government Opium Factory :

Provided that nothing in this rule shall apply to import of morphine, codeine, thebaine and their salts by manufacturers notified by the Government, for use in manufacture of products to be exported or to imports of small quantities of morphine, codeine, thebaine and their salts no exceeding a total 1 kilogram during a calendar year for analytical purposes by an importer, after following the procedure under rule 55 and subject to such conditions as may be specified in the import certificate issued in Form No. 4A."

*"**Rule 64. General prohibition** – No person shall manufacture, possess, transport, import inter-state, export

अंतरराज्यिक आयात, अंतरराज्यिक निर्यात, विक्रय, क्रय, उपभोग या उपयोग नहीं करेगा ।"

नियम 65 में ऐसे मनःप्रभावी पदार्थों के विनिर्माण को, जो नियमों की अनुसूची-1 में विनिर्दिष्ट से भिन्न हैं, नियम, 1945 के अधीन अनुदत्त अनुज्ञप्ति की शर्तों के अधीन और के अनुसार प्राधिकृत किया गया है । इस नियम में विभिन्न अन्य आनुषंगिक बातों के बारे में भी उपबंध है । नियम 65क में किसी मनःप्रभावी पदार्थ के विक्रय, क्रय, उपभोग या उपयोग को नियम, 1945 के अनुसार के सिवाय प्रतिषिद्ध किया गया है ।

32. नियम 66 में किसी व्यक्ति द्वारा कोई मनःप्रभावी पदार्थ नियम, 1945 के अधीन प्राधिकृत किन्हीं प्रयोजनों के लिए **भी** तब तक कब्जे में रखना प्रतिषिद्ध किया गया है जब तक कि ऐसे किसी मनःप्रभावी पदार्थ को कब्जे में रखने वाला व्यक्ति ऐसा पदार्थ कब्जे में रखने के लिए नियम, 1985 के अधीन उल्लिखित किन्हीं प्रयोजनों के लिए विधिपूर्वक प्राधिकृत न हो । ऐसे व्यक्ति जो नियम, 1985 के अधीन प्राधिकृत हैं, और ऐसे व्यक्ति सामग्री की जितनी मात्रा कब्जे में रखने के लिए प्राधिकृत हैं, वे नियम 66(2) के अधीन विनिर्दिष्ट किए गए हैं । वे निम्नलिखित हैं –

(1) सरकार आदि द्वारा अनुरक्षित अथवा समर्थित कोई अनुसंधान संस्था या अस्पताल या औषधालय - नियम 66(2).

(2) ऐसे व्यक्ति, जहां वैयक्तिक चिकित्सीय उपयोग के लिए, वस्तुतः नियम 66(2) के दो परंतुकों के अधीन विनिर्दिष्ट परिसीमाओं और शर्तों के अधीन रहते हुए, ऐसा कब्जा आवश्यक है ।

33. नियम 66 निम्नलिखित प्रकार से है :–

*"**नियम 66. मनःप्रभावी पदार्थों, आदि को कब्जे में रखना –** (1) कोई व्यक्ति नियम, 1945 के अंतर्गत आने वाले किन्हीं प्रयोजनों के लिए कोई मनःप्रभावी पदार्थ तब तक कब्जे में नहीं रखेगा जब तक

---

inter-state, sell, consume or use any of the psychotropic substances specified in Schedule-1."

*"**Rule 66. Possession, etc. of psychotropic substances. –** No person shall possess any psychotropic substance for any of the purposes covered by the 1945 Rules, unless he is lawfully

कि वह ऐसे पदार्थ को उक्त किन्हीं प्रयोजनों के लिए कब्जा में रखने के लिए विधिपूर्वक प्राधिकृत न हो ।

(2) उप-नियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, सरकार अथवा स्थानीय निकाय द्वारा अथवा पूर्त अथवा स्वैच्छिक अभिदान द्वारा अनुरक्षित या समर्थित कोई अनुसंधान संस्था या अस्पताल या औषधालय, जो नियम, 1945 के अधीन किसी मनःप्रभावी पदार्थ को कब्जे में रखने के लिए प्राधिकृत नहीं है, या कोई व्यक्ति जो नियम 1945 के अधीन इस प्रकार प्राधिकृत नहीं है, दोनों ऐसे पदार्थ की उतनी युक्तियुक्त मात्रा जितनी उनकी वास्तविक वैज्ञानिक आवश्यकताओं के लिए आवश्यक है, या इतनी अवधि के लिए जितनी उक्त अनुसंधान संस्था या, यथास्थिति, उक्त अस्पताल अथवा व्यक्ति आवश्यक समझे, कब्जे में रख सकेगा :

परंतु जहां ऐसा मनःप्रभावी पदार्थ किसी व्यक्ति के वैयक्तिक उपयोग के लिए उसके कब्जे में है, वहां उसकी मात्रा एक समय पर एक सौ खुराक इकाई से अधिक नहीं होगी :

---

authorized to possess such substance for any of the said purposes under the rules.

(2) Notwithstanding anything contained in sub-rule (1), any research institution or a hospital or dispensary maintained or supported by Government or local body or by charity or voluntary subscription, which is not authorized to possess any psychotropic substance under the 1945 Rules, or any person who is not so authorized under the 1945 Rules, may possess a reasonable quantity of such substance as may be necessary for their genuine scientific requirements, or both for such period as is deemed necessary by the said research institution or, as the case may be, the said hospital or dispensary or person :

Provided that where such psychotropic substance is in possession of an individual for his personal medical use the quantity thereof shall not exceed one hundred dosage at a time :

परंतु यह और कि कोई व्यक्ति एक समय पर एक सौ खुराक इकाई से अधिक किंतु एक समय पर तीन सौ खुराक इकाई से अनधिक मात्रा, यदि किसी रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से विहित किया गया है, तो अपने वैयक्तिक दीर्घावधि चिकित्सीय उपयोग के लिए कब्जे में रख सकेगा ।

(3) उप-नियम (2) में निर्दिष्ट अनुसंधान संस्था, अस्पताल और औषधालय अपने कब्जे में रखे गए मनःप्रभावी पदार्थ के क्रय और उपभोग के संबंध में उचित लेखा और अभिलेख बनाए रखेगा ।'

34. नियम, 1985 के अध्याय 6 और 7 के उपबंधों के उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर, हमारी यह राय है कि इन दोनों अध्यायों में उन स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के आयात और निर्यात की अनुज्ञा देने और विनियमित करने के नियम, अध्याय 6 में अनुबद्ध विभिन्न शर्तों और प्रक्रिया के अधीन रहते हुए, अंतर्विष्ट हैं जो नियम, 1985 की अनुसूची में विनिर्दिष्ट से भिन्न हैं । जबकि अध्याय 7 अनन्य रूप से स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के व्यौहार से संबंधित विभिन्न पहलुओं और उन शर्तों के संबंध में है जिनके अधीन रहते हुए ऐसा व्यौहार अनुज्ञात है । हमारी यह राय है कि वास्तव में नियम 53 और 64 दोनों ही क्रमशः अध्याय 6 और 7 की साधारण स्कीम के अपवाद की प्रकृति के हैं जिनमें उन स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों की सूची अंतर्विष्ट है जिनका व्यौहार इन दोनों अध्यायों के अन्य उपबंधों के होते हुए भी किसी रीति में नहीं किया जा सकता है । हमारी यह स्पष्ट राय है कि न तो नियम 53 और न ही नियम 64 स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के व्यौहार को प्रतिषिद्ध करने वाले प्राधिकार का स्रोत है, यह स्रोत धारा 8 है । हमारे मत में **राजेश कुमार गुप्ता** (उपरोक्त) वाला मामला गलत रूप से विनिश्चित किया गया है ।

Provided further that an individual may possess the quantity of exceeding one hundred dosage units at a time but not exceeding three hundred dosage units at a time for his personal long term medical use if specifically prescribed by a Registered Medical Practitioner.

(3) The research institution, hospital and dispensary referred to in sub-rule (2) shall maintain proper accounts and records in relation to the purchase and consumption of the psychotropic substance in their possession."

35. हमारे निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत मामले में अधिनियम की धारा 80 की विवक्षा का पूर्ण विश्लेषण करने की वास्तव में आवश्यकता नहीं है । केवल यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 आवश्यक रूप से ओषधियों के साधारणतया विनिर्माण, विक्रय, क्रय आदि की विभिन्न संक्रियाओं के संबंध में है जबकि स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 ओषधियों की एक अधिक विनिर्दिष्ट श्रेणी के संबंध में है और इसलिए इस विषय पर एक विशेष विधि है । इसके अतिरिक्त, इस अधिनियम के उपबंध अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अतिरिक्त लागू होते हैं । अधिनियम की धारा 80 इस प्रकार है :–

> "**80. ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के लागू होने का वर्जित न होना** – इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंध ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 (1940 का 23) या उसके अधीन बनाए गए नियमों के अतिरिक्त होंगे न कि उसके अल्पीकरण में ।"

36. हमारे उपरोक्त निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, सभी दांडिक अपीलों में आक्षेपित आदेशों की सत्यता पर समुचित संख्या वाले न्यायपीठ द्वारा विचार किए जाने की आवश्यकता है । तथापि, इस तथ्य को देखते हुए कि इन मामलों में से अधिकांश पुराने मामले हैं (वर्ष 2006 से 2013 के हैं), इसलिए हम यह उचित समझते हैं कि इन सभी मामलों को इस निर्णय को ध्यान में रखते हुए समुचित आदेश पारित करने के लिए संबंधित उच्च न्यायालयों को विप्रेषित कर दिया जाए ।

37. तद्नुसार आदेश किया जाता है । इन अपीलों का निपटारा किया जाता है ।

अपीलों का निपटारा किया गया ।

जस.

———————

संसद् के अधिनियम

स्त्री अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1986

(1986 का अधिनियम संख्यांक 60)

[23 दिसम्बर, 1986]

विज्ञापनों के माध्यम से या प्रकाशनों, लेखों, रंगचित्रों, आकृतियों में या किसी अन्य रीति से स्त्रियों के अशिष्ट रूपण का प्रतिषेध करने और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के सैंतीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम स्त्री अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1986 है ।

(2) इसका विस्तार, जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय, संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख* को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2 परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से, अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "विज्ञापन" के अंतर्गत कोई सूचना, परिपत्र, लेबल, रैपर या अन्य दस्तावेज है और इसके अंतर्गत प्रकाश, ध्वनि, धुआं या गैस के माध्यम से किया गया कोई दृश्य रूपण भी है ;

(ख) "वितरण" के अंतर्गत नमूने के तौर पर, चाहे मुफ्त या अन्यथा वितरण भी है ;

---

* 2.10.1987 – देखिए अधि. सं. सा. का. नि. 821अ, तारीख 25.9.1987, भारत का राजपत्र, असाधारण, भाग 2, धारा 3(i), तारीख 25.9.1987.

(ग) "स्त्री अशिष्ट रूपण" से किसी स्त्री की आकृति, उसके रूप या शरीर या उसके किसी अंग का, किसी ऐसी रीति से ऐसे रूप में चित्रण करना अभिप्रेत है जिसका प्रभाव अशिष्ट हो, अथवा जो स्त्रियों के लिए अपमानजनक या निन्दनीय हो, अथवा जिससे, लोक नैतिकता या नैतिक आचार के विकृत, भ्रष्ट या क्षति होने की संभावना है ;

(घ) "लेबल" से कोई लिखित, चिन्हित, स्टाम्पित, मुद्रित या चित्रित विषय-वस्तु अभिप्रेत है जो किसी पैकेज पर चिपकाई गई है या उस पर दिखाई दे रही है ;

(ङ) "पैकेज" के अन्तर्गत कोई बाक्स, कार्टन, टिन या अन्य पात्र भी है ;

(च) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ।

3. स्त्री अशिष्ट रूपण अंतर्विष्ट करने वाले विज्ञापनों का प्रतिषेध – कोई व्यक्ति, कोई ऐसा विज्ञापन जिसमें किसी भी रूप में स्त्रियों का अशिष्ट रूपण अंतर्विष्ट है, प्रकाशित नहीं करेगा या प्रकाशित नहीं करवाएगा अथवा उसके प्रकाशन या प्रदर्शन की व्यवस्था नहीं करेगा या उसमें भाग नहीं लेगा ।

4. स्त्री अशिष्ट रूपण अंतर्विष्ट करने वाली पुस्तकों, पुस्तिकाओं, आदि के प्रकाशन या डाक द्वारा भेजने का प्रतिषेध – कोई व्यक्ति, कोई ऐसी पुस्तक, पुस्तिका, कागज-पत्र, स्लाइड, फिल्म, लेख, रेखाचित्र, रंगचित्र, फोटोचित्र, रूपण या आकृति का, जिसमें किसी रूप में स्त्रियों का अशिष्ट रूपण अंतर्विष्ट है, उत्पादन नहीं करेगा या उत्पादन नहीं करवाएगा, विक्रय नहीं करेगा, उसको भाड़े पर नहीं देगा, वितरित नहीं करेगा, परिचालित नहीं करेगा या डाक द्वारा नहीं भेजेगा :

परन्तु इस धारा की कोई बात, –

(क) किसी ऐसी पुस्तक, पुस्तिका, कागज-पत्र, स्लाइड, फिल्म, लेख, रेखाचित्र, रंगचित्र, फोटोचित्र, रूपण या आकृति को लागू नहीं होगी, –

(i) जिसका प्रकाशन लोक कल्याण के लिए होने के कारण इस आधार पर न्यायोचित साबित हो जाता है कि ऐसी

पुस्तक, पुस्तिका, कागज-पत्र, स्लाइड, फिल्म, लेख, रेखाचित्र, रंगचित्र, फोटोचित्र, रूपण या आकृति विज्ञान, साहित्य, कला अथवा विद्या या सर्वसाधारण संबंधी अन्य उद्देश्यों के हित में है ; या

(ii) जो सद्भावपूर्वक धार्मिक प्रयोजनों के लिए रखी या उपयोग में लाई जाती है ;

(ख) किसी ऐसे रूपण को लागू नहीं होगी जो –

(i) प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 (1958 का 24) के अर्थ में किसी प्राचीन संस्मारक पर या उसमें ; या

(ii) किसी मंदिर पर या उसमें, या मूर्तियों के प्रवहण के उपयोग में लाए जाने वाले या किसी धार्मिक प्रयोजन के लिए रखे या उपयोग में लाए जाने वाले किसी रथ पर,

तक्षित, उत्कीर्ण, रंगचित्रित या अन्यथा रूपित है ;

(ग) किसी ऐसी फिल्म को लागू नहीं होगी जिसकी बाबत चलचित्र अधिनियम, 1952 (1952 का 37) के भाग 2 के उपबंध लागू होंगे ।

5. प्रवेश करने और तलाशी लेने की शक्तियां – (1) ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो विहित किए जाएं, राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत कोई राजपत्रित अधिकारी, उस क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर जिसके लिए वह इस प्रकार प्राधिकृत है, –

(क) किसी ऐसे स्थान में, जिसमें उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किया गया है या किया जा रहा है, ऐसे सहायकों के साथ, यदि कोई हों, जिन्हें वह आवश्यक समझे, सभी उचित समयों पर, प्रवेश कर सकेगा और उसकी तलाशी ले सकेगा ;

(ख) कोई ऐसा विज्ञापन अथवा कोई ऐसी पुस्तक, पुस्तिका, कागज-पत्र, स्लाइड, फिल्म, लेख, रेखाचित्र, रंगचित्र, फोटोचित्र, रूपण या आकृति अभिगृहीत कर सकेगा, जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि वह इस अधिनियम के किन्हीं

उपबंधों का उल्लंघन करती है ;

(ग) खंड (क) में उल्लिखित किसी स्थान में पाए गए किसी अभिलेख, रजिस्टर, दस्तावेज या अन्य किसी भौतिक पदार्थ की परीक्षा कर सकेगा और, यदि उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि उससे इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध के किए जाने का साक्ष्य प्राप्त हो सकता है तो उसे अभिगृहीत कर सकेगा :

परन्तु इस उपधारा के अधीन कोई प्रवेश किसी प्राइवेट निवास-गृह में वारंट के बिना नहीं किया जाएगा :

परन्तु यह और कि इस उपधारा के अधीन अभिग्रहण की शक्ति का प्रयोग, किसी ऐसे दस्तावेज, वस्तु या चीज के लिए, जिसमें ऐसा कोई विज्ञापन अंतर्विष्ट है, उस दस्तावेज, वस्तु या चीज की अंतर्वस्तु सहित, यदि कोई हो, किया जा सकेगा, यदि वह विज्ञापन समुद्भूत होने के कारण या अन्यथा, उस दस्तावेज, वस्तु या चीज से, उसकी समग्रता, उपयोगिता या विक्रय मूल्य पर प्रभाव डाले बिना, अलग नहीं किया जा सकता है ।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के उपबंध इस अधिनियम के अधीन किसी तलाशी या अभिग्रहण को, जहां तक हो सके, वैसे ही लागू होंगे जैसे वे उक्त संहिता की धारा 94 के अधीन जारी किए गए वारंट के प्राधिकार के अधीन ली गई किसी तलाशी या किए गए किसी अभिग्रहण को लागू होते हैं ।

(3) जहां कोई व्यक्ति उपधारा (1) के खंड (ख) या खंड (ग) के अधीन किसी वस्तु का अभिग्रहण करता है वहां वह यथाशक्य शीघ्र, निकटतम मजिस्ट्रेट को उसकी इत्तिला देगा और उस वस्तु की अभिरक्षा के संबंध में उससे आदेश प्राप्त करेगा ।

6. शास्ति – कोई व्यक्ति, जो धारा 3 या धारा 4 के उपबंधों का उल्लंघन करेगा, प्रथम दोषसिद्धि पर दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से, जो दो हजार रुपए तक का हो सकेगा, तथा द्वितीय या पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि की दशा में, कारावास से जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु जो पांच वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से भी, जो दस हजार रुपए से कम का नहीं होगा किन्तु जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

7. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कम्पनी द्वारा किया गया है वहां प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और तदनुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे :

परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को दंड का भागी नहीं बनाएगी यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सभी सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है तथा यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है वहां ऐसे निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही की जाएगी और तदनुसार उसे दंडित किया जाएगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

(क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत फर्म या व्यष्टियों, का अन्य संगम भी है ; तथा

(ख) किसी फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

8. अपराधों का संज्ञेय और जमानतीय होना – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध जमानतीय होगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध संज्ञेय होगा ।

9. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम के अधीन सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के किसी अधिकारी के विरुद्ध नहीं होगी ।

10. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् : –

(क) वह रीति जिससे विज्ञापनों या अन्य वस्तुओं का अभिग्रहण किया जाएगा और वह रीति जिससे अभिग्रहण-सूची तैयार की जाएगी और उस व्यक्ति को दी जाएगी जिसकी अभिरक्षा से कोई विज्ञापन या अन्य वस्तु अभिगृहीत की गई है ;

(ख) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाना अपेक्षित है या विहित किया जाए ।

(3) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

———